अध्ययन मण्डल

अध्यक्ष **संयोजक**
कुलपति **निदेशक समाज विज्ञान विद्याशाखा**
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी
1.प्रो0 अरविंद के जोशी, बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी (उत्तर प्रदेश)
2.प्रो0 बी.मोहन कुमार, जी.बी.पंत कृषि व प्रोद्योगिकी विश्वविद्यालय, पंतनगर, उत्तराखण्ड

पाठ्यक्रम समन्वयक

डॉ0 दीपक पालीवाल, सहायक प्राध्यापक समाजशास्त्र, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी

इकाई लेखन — इकाई संख्या

Ms.Shalini Chaudhary UOU Haldwani	1,3
Dr.Naveen Joshi, Wildlife Institute of India, Dehradun Uttrakhand	2,4
Dr.A.K. Mishra, National Center for good Governance, AR&PG, Government of India Cozy Noojk, Charlie Villa Road, Mussoorie & Dr. Khimanand Balodi, Doon University Dehradun	5,6
Dr. Pankaj Tiwari	7
Translation of Units: Punit Chaturvedi	5,6,7

संपादन

डॉ0 दीपक पालीवाल, सहायक प्राध्यापक समाजशास्त्र, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी

कापीराइट @ उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय

प्रकाशन वर्ष- 2020

प्रकाशन- उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी- 263139

सर्वाधिक सुरक्षित। इस प्रकाशन का कोई भी अंश उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय की लिखित अनुमति लिए बिना मिमियोग्राफ अथवा किसी अन्य साधन से पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।

उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय,
हल्द्वानी MASO-604

पहाड़ी क्षेत्र में सतत विकास-I

Sustainable Development in Hill Area-I

Block I	**Introduction to Sustainable Development**	
Unit 1:	**Changing conception of Development: Economic-Human-Social-Sustainable development linkages** विकास की बदलती अवधारणा-सतत विकास-सामाजिक -आर्थिक- : मानव - संबंध	पृष्ठ–1–18
Unit 2:	**Sustainable Development principles** सतत विकास के सिद्धांत	पृष्ठ–19–42
Unit 3:	**Sustainable Development Parameters: Measuring Progress and Success** सतत विकास मापदंडप्रगति और सफलता मापन -:)	पृष्ठ–43–50
Block II	**Environment and Development**	
Unit 4:	**Environmental Issues: Meaning and Concepts** पर्यावरणीय मुद्दे: अर्थ और अवधारणाए	पृष्ठ–51–69
Unit 5:	**Environment and Development: Mapping different approaches** पर्यावरण एवं विकासः सततता के विभिन्न दृष्टिकोणों का प्रारूप	पृष्ठ–70–85
Unit 6:	**Development induced displacement and its Impact** कास प्रेरित विस्थापन के कारण, परिणाम और चुनौतियां	पृष्ठ–86–98
Unit 7:	**Environmental Management: Land, water, forests** पर्यावरणीय प्रबंधनः भूमि, जल एवं वन	पृष्ठ–99–116

इकाई 1

विकास की बदलती अवधारणा: -आर्थिक- सामाजिक-सतत विकास-मानव- संबंध

इकाई संरचना

1.1 प्रस्तावना
1.2 उद्देश्य
1.3 विकास की बदलती अवधारणा
1.4 मानव विकास
1.4.1 मानव विकास का अवधारणा
1.4.2 मानव विकास की आवश्यकता
1.4.3 मानव विकास के संघटक
1.4.4 मानव विकास का मापन
1.4.4.1 मानव विकास सूचकांक
1.4.4.2 मानव विकास सूचकांक बनाने की प्रक्रिया
1.5 सारांश
1.6 शब्दावली
1.7 अभ्यास हेतु प्रश्न व उनके उत्तर
1.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
1.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1.1 प्रस्तावना:-

आज के प्रगतिशील युग में 'विकास' प्रत्येश देश के लिए बहुचर्चित विषय बन गया है और प्रत्येक राष्ट्र विकास की इस दौड़ में दूसरों से आगे निकलने के लिए निरन्तर प्रयासरत् है। आप जानते हैं कि किसी भी राष्ट्र के विकास में मानवीय गुणों, सामाजिक प्रकृतियाँ, आर्थिक व राजनैतिक परिस्थितियाँ और ऐतिहासिक संयोग महत्वपूर्ण कारक है। जिसमें मानव सबसे महत्वपूर्ण कारक है, जोकि अन्य सभी संसाधनों को गतिशील बनाकर उपयोगी बनाना है। जिस देश में जितना उन्नत मानव एवं सतत विकास होता है, उस देश में विकास भी उतनी ही तीव्र गति से होता है। प्रस्तुत इकाई में विकास के संदर्भ में बदलती अवधारणा को प्रस्तुत किया गया है।

1.2 उद्देश्य:-

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन से आप

- विकास की बदलती हुई विभिन्न अवधारणाओं व मानदण्डों को समझा सकेंगे।
- विकास की प्रतिष्ठित और आधुनिक विचारधारा को समझ सकेंगे।

- किसी देश के विकास हेतु मानव और सतत विकास की भूमिका को जान सकेंगे।
- किसी भी देश के लिए मानव विकास सूचकांक का निर्माण कर सकेंगे।

1.3 विकास की बदलती अवधारणा:-

आप जानते हैं कि संकुचित अर्थ में, किसी देश की अर्थव्यवस्था के सभी क्षेत्रों में उत्पादकता के स्तर को बढ़ाना ही आर्थिक विकास है, जबकि विस्तृत अर्थ में, आर्थिक विकास से तात्पर्य किसी की राष्ट्रीय आय में वृद्धि करके, निर्धनता को दूर करना तथा सामान्य लोगों के जीवन स्तर में सुधार करने से है। जैसा कि आपको अवगत ही हैं कि आर्थिक विकास के मापन के विचारों को भी प्रतिष्ठित एवं आधुनिक निम्न दो मुख्य भागों में बाँटा जा सकता है-

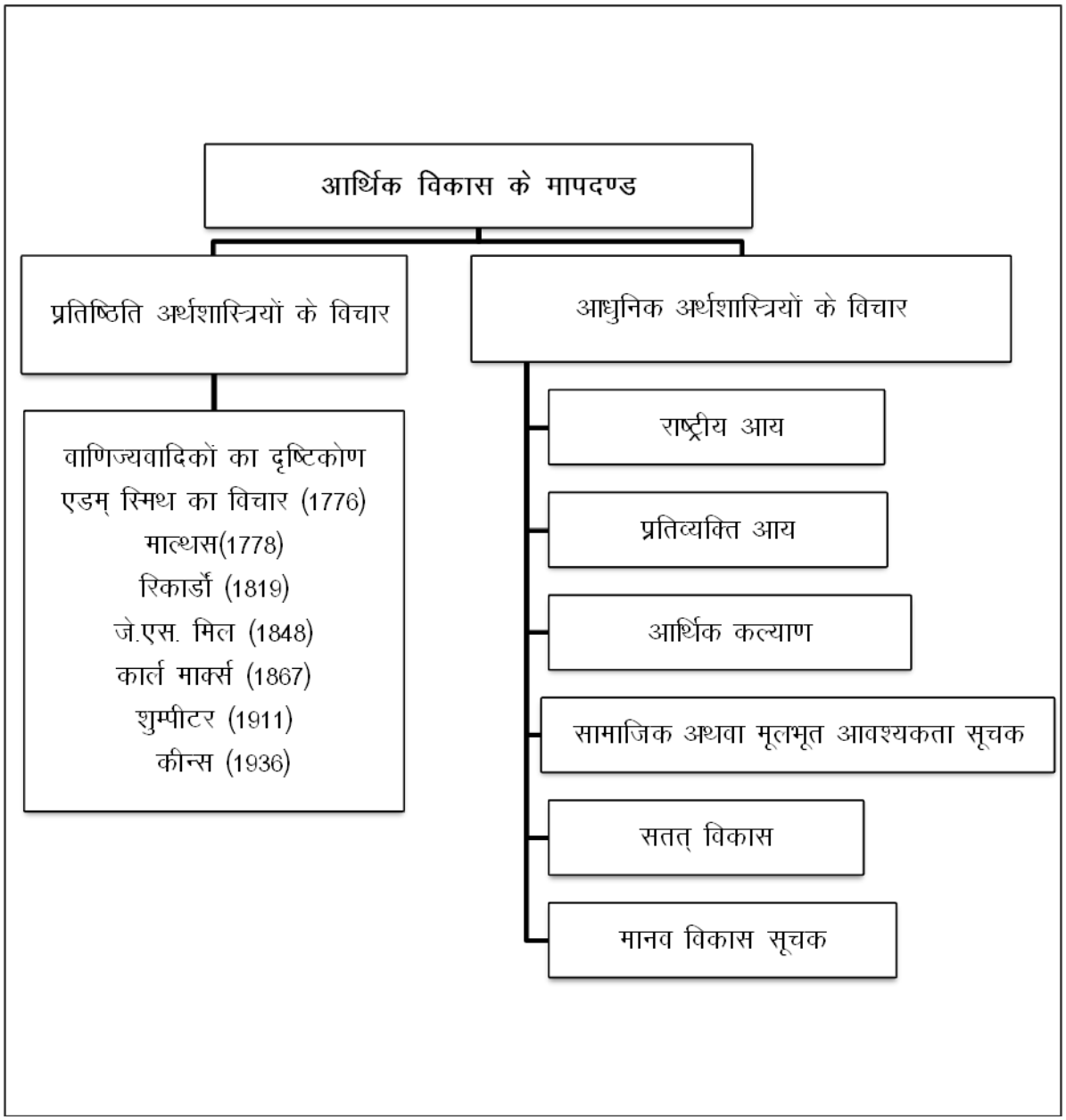

विकास की प्रतिष्ठित विचारधारा:- आर्थिक विकास के मापदण्डों के लिए प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों के विचार भी प्रायः भिन्न थे। जहाँ **वाणिज्यवादी**, किसी भी देश के सोने व चाँदी के कोष को ही आर्थिक विकास का मापक मानते थे। वहीं एडम् स्मिथ व उनके समकालीन अर्थशास्त्रियों ने किसी देश में उत्पादित वस्तुओं और सेवाओं को ही आर्थिक विकास का मापक माना था, क्योंकि **एडम् स्मिथ** के अनुसार किसी भी देश की शक्ति का ज्ञान, उस देश की उत्पादन शक्ति, श्रम की दिशा, निवासियों में तकनीकि का ज्ञान एवं विशिष्टिकीरण की मात्रा से होता है। **थामर्स राबर्ट माल्थस** ने धन वृद्धि को ही आर्थिक विकास का मापदण्ड माना। **रिकार्डो** ने अपनी पुस्तक Principles of Political Economy and Taxation (1817) में अपनी तर्कशक्ति का प्रयोग करके प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों के विचारों के साथ

आय वितरण के पहलू को जोड़कर नया रुप प्रदान किया। जहाँ **जे.एस. मिल**, आर्थिक विकास को उत्पादन साधनों का फलन मानते थे जिसमे श्रम व भूमि, उत्पादन के दो महत्त्वपूर्ण कारक हैं। वहीं **कार्ल मार्क्स** ने समाजवाद को ही आर्थिक विकास का मापदण्ड माना। **शुम्पीटर** ने आर्थिक विकास के प्रमुख साधन के रुप में स्फीतिकारी वित्त तथा नव प्रवर्तनों को महत्त्वपूर्ण माना। **कीन्स** ने आर्थिक विकास में अनेक उपकरणों जैसे: प्रभावपूर्ण माँग, गुणक, उपभोग व बचत प्रवृत्ति व पूँजी की सीमान्त उत्पादकता व ब्याज दर की भूमिका को बताया जिसका प्रयोग आर्थिक विकास के आधुनिक विचारों व सिद्धान्तों में किया गया।

विकास की आधुनिक विचारधारा:- प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों की भाँति ही आधुनिक अर्थशास्त्रियों ने भी किसी एक आयाम को ही आर्थिक विकास का मापदण्ड नहीं माना। मायर व वाल्डविन, लुईस, यंगसन, कुजनेट, श्रीमती उर्सुला हिक्स, सैमुएलसन, पीगू, विलियमसन व बटरिक व प्रो. डी. ब्राइट सिंह जैसे विकासवादी अर्थशास्त्रियों ने किसी देश की **कुल वास्तविक आय** में वृद्धि को ही विकास का मापदण्ड माना था। उनके अनुसार "**आर्थिक विकास को समय की दीर्घावधि में अर्थव्यवस्था की वास्तविक राष्ट्रीय आय में वृद्धि के रुप में मापा जाए।**"

वहीं प्रो. पॉल ए. बरन व एन.एस. बुकैनन तथा ई. एलिस जैसे अर्थशास्त्रियों ने लम्बी अवधि में **प्रति व्यक्ति वास्तविक आय** में वृद्धि को विकास माना। उनके अनुसार, आर्थिक विकास के लिए वास्तविक आय में वृद्धि की दर जनसंख्या में वृद्धि की दर से अधिक होनी चाहिए।

विकास की आर्थिक कल्याण संबंधित विचारधारा:- इसके उपरान्त् ओकुन व रिचर्ड्सन ने किसी देश के बढ़ते हुए उपभोग व जीवन स्तर अर्थात् **आर्थिक कल्याण** को ही विकास का अभिसूचक माना। उनके अनुसार विकास **"भौतिक समृद्धि में ऐसा अनवरत् दीर्घकालीन सुधार है जोकि वस्तुओं और सेवाओं के बढ़ते हुए प्रवाह में प्रतिबिम्बित समझा जा सकता है।"**

विकास की सामाजिक एवं मूलभूत आवश्यकता संबंधित विचारधारा:-1960 के दशक में, अर्थशास्त्रिगण कल्याण के वैकल्पिक मानदण्ड मालूम करने के कोशिश करते रहे, जिससे लोगों के जीवन-यापन के स्तर में आने वाले परिवर्तनों को प्रकट कर सके। इन व्यापक सूचकांकों का निर्माण करने के लिए भारित ज्यामितीय व अंकगणित रीति का प्रयोग किया गया। 1962 में **एवरेट ई. हैगन** ने 11 सामाजिक व व्यक्तिगत सूचकों का प्रयोग किया। वहीं **डोनाल्ड एच. नीवैरोस्की** ने 14 सूचकों का प्रयोग किया। **इर्मा एडलमैन** और **सिन्थिया टाफ्ट मॉरिस** ने 40 सामाजिक, आर्थिक व राजनीतिक तत्वों पर आधारित सूचकांक 1967 में तैयार किया। पहली बार 1970 में संयुक्त राष्ट्र सामाजिक विकास अनुसंधान संस्था ने 16 सामाजिक व आर्थिक सूचकों का अध्ययन किया। **हिक्स और स्ट्रीटन** ने सन् 1979 में स्वास्थ्य, शिक्षा, खाद्य, जल आपूर्ति, स्वच्छता व आवास जैसी 06 मूलभूत आवश्यकताओं का एक सूचकांक तैयार किया। इसी वर्ष में **मॉरिस डी. मॉरिस** ने विकास को मापने के लिए **"जीवन की भौतिक गुणवत्ता सूचक"** तैयार किया, जोकि प्रत्याशित आयु, शिशु मृत्यु दर व साक्षरता पर आधारित है।

विकास की सतत विकास संबंधित विचारधारा:- सतत विकास अथवा टिकाऊ विकास (Sustainable Development), विकास की वह अवधारणा है 1987 में प्रस्तुत की गई जिसमें विकास की नीतियां बनाते समय इस बात का ध्यान रखा जाता है कि मानव की न केवल वर्तमान आवश्यकताओं की पूर्ति हो, वरन् अनन्त काल मानव की आवश्यकताओं की पूर्ति सुनिश्चित हो सके। इसमें प्राकृतिक पर्यावरण की सुरक्षा पर विशेष बल दिया जाता है। इस विचार धारा को अगली इकाई में विस्तार से समझाया गया है।

विकास की मानव विकास संबंधित विचारधारा:-

सर्वप्रथम मानव विकास सूचकांक **महबूब-उल-हक** के निर्देशन में संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम द्वारा 1990 में तैयार किया गया था। इसके उपरान्त् अनेक अर्थशास्त्रियों का ध्यान मानव विकास की ओर आकर्षित हुआ। और तभी से सभी देशों के आर्थिक विकास का मापन मानव विकास सूचकांक के माध्यम से किया जा रहा है। अब यह प्रश्न उठता है कि मानव विकास क्या है?

1.4.1 मानव विकास की अवधारणा

संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम की 1997 की मानव विकास रिपोर्ट में मानव विकास की अवधारणा की व्याख्या करते हुए लिखा गया है कि, **''यह वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा जनसामान्य के विकल्पों का विस्तार किया जाता है और इनके द्वारा उनके कल्याण के उन्नत स्तर को प्राप्त किया जाता है। यही मानव विकास की धारणा का मूल है। ऐसे सिद्धान्त न तो सीमाबद्ध होते हैं और न ही स्थैतिक, परन्तु विकास के स्तर को दृष्टि में रखते हुए जनसामान्य के पास तीन विकल्प हैं - एक लम्बा और स्वस्थ जीवन व्यतीत करना, ज्ञान प्राप्त करना और अच्छा जीवन स्तर प्राप्त करने के लिए आवश्यक संसाधनों तक अपनी पहुँच बढ़ाना। कई और विकल्प भी हैं जिन्हें बहुत से लोग महत्त्वपूर्ण मानते हैं। इनमें उल्लेखनीय हैं- राजनैतिक, आर्थिक और सामाजिक स्वतंत्रता से सृजनात्मक और उत्पादक बनने के अवसर और स्वाभिमान एवं गारन्टीकृत मानव अधिकारों का लाभ उठाना।''**

प्रायः यह माना जाता है कि किसी भी मानव की आय में वृद्धि होने से उसमें सभी विकल्पों का विस्तार हो जाता है, लेकिन आय के असमान वितरण व शासकों द्वारा कुछ राजनैतिक, सामाजिक व आर्थिक राष्ट्रीय प्राथमिकताओं के कारण लोगों की आय में विस्तार से लोगों के सामने विकल्पों का विस्तार नहीं होता है।

महबूब-उल-हक कहते हैं कि, **''यदि समाज यह नहीं समझता कि उनका वास्तविक धन उनके लोग हैं, तो भौतिक धन के निर्माण के बारे में अत्यधिक लगाव मानव जीवन को समृद्ध बनाने के लक्ष्य को धुँधला कर देता है।''** अतः मानव विकास लोगों के सभी जरुरी विकल्पों में विस्तार के साथ-साथ प्राप्त होने वाले कल्याण के स्तर को ऊँचा करने की प्रक्रिया है।

1.4.2 मानव विकास की आवश्यकता:-

अब यह प्रश्न उठता है कि किसी भीदेश के आर्थिक विकास लिये मानव विकास क्यों आवश्यक है?

पॉल स्ट्रीटन ने मानव विकास की आवश्यकताओं पर प्रकाश डालते हुए छः कारणों का वर्णन किया है, जो यह स्पष्ट करते हैं कि मानव विकास आवश्यक क्यों है?

- ✓ उनके अनुसार मानव विकास उद्देश्य है, जबकि आर्थिक संवृद्धि मानव विकास का साधन मात्र है, क्योंकि आर्थिक विकास की सम्पूर्ण प्रक्रिया का अन्तिम उद्देश्य स्त्रियों, पुरुषों और बच्चों की वर्तमान व भावी पीढ़ियों को लक्ष्य के रुप में देखना है। इसके साथ-साथ मानव की स्थितियों में सुधार करके लोगों के सभी विकल्पों में विस्तार करना है।
- ✓ किसी भी देश में ऊँची उत्पादकता को प्राप्त करने का एक महत्त्वपूर्ण साधन मानव विकास है। आप सभी भलीभाँति जानते हैं कि किसी देश में समपोषित, स्वस्थ, शिक्षित, कुशल व सतर्क श्रम शक्ति सबसे महत्त्वपूर्ण उत्पादक परिसम्पत्ति है। अतः सभी देशों में मानव के पोषण, स्वास्थ्य सेवा, शिक्षा में उचित निवेश के द्वारा उत्पादकता का उचित आधर तैयार किया जाता है।
- ✓ मानव विकास, मानव पुनरुपादन को धीमा करके परिवार के आकार को छोटा करने में सहायता पहुंचाता है। जिससे जनसंख्या के नकारात्मक प्रभावों को कम करे सकारात्मक प्रभावों में बदलना सम्भव होता है, क्योंकि शिक्षा के स्तर में सुधार से लोगों में छोटे परिवार के फायदों के प्रति चेतना पैदा होती है और अच्छी स्वास्थ्य सुविधाओं की उपलब्धता के परिणामस्वरुप बाल मृत्यु दर में कमी आती है। इसका प्रभाव यह पड़ता है कि लोग ज्यादा बच्चों की जरुरत महसूस नहीं करते हैं।
- ✓ मानव विकास, भौतिक पर्यावरण की दृष्टि से भी आवश्यक है, क्योंकि मानव विकास के परिणामस्वरुप देश में गरीबों की संख्या में भी कमी आती है। इससे वनों के विनाश, रेगिस्तान के विस्तार और भूसंरक्षण में भी कमी आती है। परम्परागत अर्थशास्त्रियों का मत था कि किसी देश में बढ़ती जनसंख्या व उसके बढ़ते घनत्व का पर्यावरण पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है, लेकिन लोगों का भूमि पर अधिकार सुरक्षित करके,इस बढ़ती जनसंख्या व ऊँचे जनसंख्या घनत्व से मिट्टी व वनों का संरक्षण किया जा सकता है।
- ✓ मानव विकस से गरीबी में कमी होती है तो एक स्वस्थ समाज के गठन, लोकतंत्र के निर्माण और सामाजिक स्थिरता में सहायता मिलती है।
- ✓ मानव विकास से सामाजिक उपद्रवों में कमी आती है जिससे देश में राजनीतिक स्थिरता बनी रहती है।

अतः आपको अब स्पष्ट हो गया होगा की किसी भी राष्ट्र के सम्पूर्ण विकास हेतु मानव विकास आवश्यक है, क्योंकि मानव विकास प्रतिमान में न केवल किसी देश की अर्थव्यवथा अपितु राजनीतिक, सामाजिक व सांस्कृतिक कारकों को भी महत्त्व दिया जाता है।

1.4.3 मानव विकास के संघटक:-

आप जानते हैं कि आर्थिक विकास की आधुनिक परिभाषा का सम्बन्ध अच्छे मानवीय जीवन से है तो अब प्रश्न यह उठता है कि एक अच्छे जीवन के संघटक कौन-कौन से हैं?

मानव जीवन के संघठकों के बारे में अलग-अलग अर्थशास्त्रिगण अलग-अलग संघठकों पर बल देते हैं। जहाँ महबूब-उल-हक ने मानव विकास प्रतिमान के लिए औचित्य, सामर्थ्यता, उत्पादकता और सशक्तिकरण चार अनिवार्य संघटक बताये थे। वहीं डेनिस गॉलिट व अन्य अर्थशास्त्रियों ने जीवन निर्वाह, आत्म-सम्मान व स्वतंत्रता संगठनों की महत्त्वपूर्ण संघठक माना। विभिन्न अर्थशास्त्रियों के द्वारा बताये गये मानव विकास के संघटकों को निम्न प्रकार दर्शाया जा सकता है-

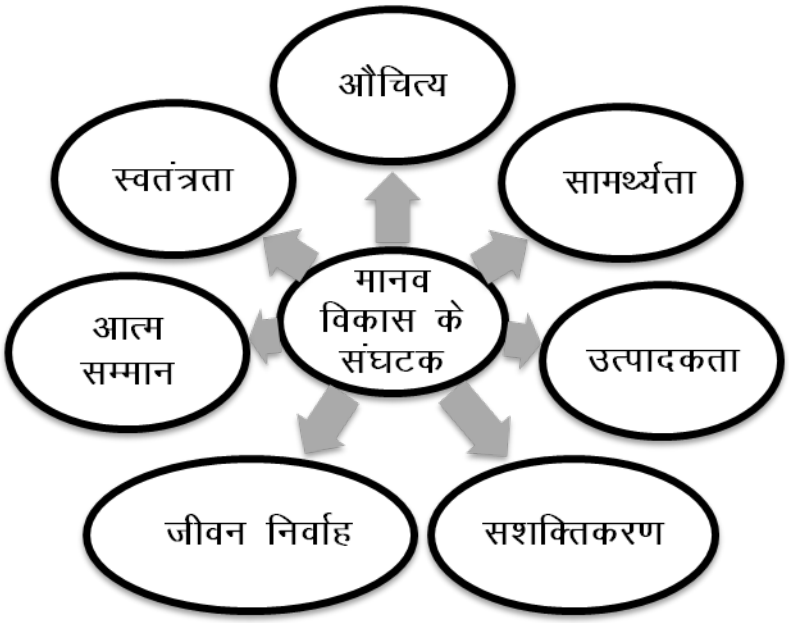

1.औचित्य:- महबूब-उल-हक ने मानव विकास के लिए अनिवार्य तत्वों की व्याख्या करते समय सर्वप्रथम औचित्य तत्व का वर्णन किया है। अब प्रश्न यह उठता है कि आखिरकार औचित्य से तात्पर्य क्या है? उनके अनुसार यदि आर्थिक विकास द्वारा लोगों के विकल्पों का विस्तार होता है तो उनकी सभी अवसरों तक न्यायोचित पहुँच होनी चाहिए। इसे ही औचित्य कहा गया। यदि कोई देश मानव विकास हेतु अपने देश के नागरिको का सभी आवश्यक विकल्पों तक पहुँच को न्यायोचित बनाना चाहता है तो उसे समाज में व्यापत सामर्थ्य के आधारभूत करकों का पुनर्गठन करना चाहिए। इसके लिए निम्नलिखित दिशा में परिवर्तन करने चाहिए।

- ✓ पहला, उत्पादक परिसम्पत्तियों के वितरण में परिवर्तन करना चाहिए। यह परिवर्तन विशेष रुप से भूमि सुधारों द्वारा किया जा सकता है।
- ✓ दूसरा, आय के वितरण में परिवर्तन करना चाहिए। इसके लिए राजकोषीय नीति को एक महत्त्वपूर्ण उपकरण के रुप में प्रयोग किया जाना चाहिए, जिसके द्वारा आय का अतंरण अमीरों से गरीबों कीओर होगा।

- ✓ तीसरा, साख प्रणाली में परिवर्तन करना चाहिए। साख प्रणाली में परिवर्तन इस प्रकार से होना चाहिए, जिससे गरीबों की ऋण सम्बन्धी आवश्यकताओं को सन्तोषपूर्ण ढंग से पूरी की जा सके।
- ✓ चौथा, राजनीतिक अवसरों में इस प्रकार परिवर्तन करना चाहिए, जिसके द्वारा इसमें समानता लायी जा सके। इसके लिए वोट सम्बन्धित अधिकारों में सुधार होना चाहिए व इससे साथ राजनीतिक शक्तियों का विकेन्द्रीकरण किया जाना चाहिए।
- ✓ पाचवाँ, मानव विकास में सामाजिक व वैधानिक बाधायें भी महत्त्वपूर्ण बाधा हैं। अतः इन्हें दूर करने के प्रयास किये जाने चाहिए, क्योंकि ये महिलाओं और अल्पसंख्यक वर्गों के लोगों की महत्त्वपूर्ण आर्थिक व राजनीतिक अवसरों तक पहुँच को सीमित करती है।

2.सामर्थ्यता:- जैसा कि आप सभी जानते हैं कि सामर्थ्यता की संकल्पना को प्राकृतिक संसाधनों के नवीनीकरण के रुप में देखा व समझा जाता है, जबकि यहसामर्थ्य विकास का केवल एक पहलू मात्र है। जिसमें वर्तमान पीढ़ी को प्राप्त सभी अवसर हमारी भावी पीढ़ी को भी प्राप्त होने चाहिए। भावी पीढ़ी का यह अधिकार ही सामर्थ्यता को मानव विकास का अनिवार्य संघठक बनाता है। महबूब-उल-हक ने कहा, **''मानव अवसरों की सामर्थ्यता ही हमारी दिलचस्पी के केन्द्र में होनी चाहिए।''** क्योंकि सामर्थ्यता हेतु भौतिक मानवीय, वित्तीय व पर्यावरण सम्बन्धित सभी प्रकार की पूँजी को भविष्य के लिए बनाये रखना जरुरी होता है।

सामर्थ्यता, वितरण सम्बन्धी औचित्य का विषय है। इसके लिए विकास के अवसरों को वर्तमान व भावी, दोनों पीढ़ियों के लिए उचित ढंग से बाँटना आवश्यक हो जाता है। इसके विषय में महबूब-उल-हक कहते हैं, **''सामर्थ्यता का अर्थ गरीबी और अभाव के वर्तमान अवसरों को बनाये रखना नहीं है। यदि वर्तमान विश्व के अधिसंख्यक लोगों के लिए दुखदायी और अस्वीकार्य है तो इसे पहले बदलकर ही बनाए रखना चाहिए। दूसरे शब्दों में, जो बनाये रखने हैं, वे जीवन के सार्थक अवसर हैं, न कि मानवीय अभाव।''** वितरण के साथ-साथ सामर्थ्यता का अर्थ यह भी है कि देश के भीतर व विभिन्न देशों के बीच जीवन स्तर सम्बन्धी विषमताओं पर पुनर्विचार किया जाये और उन्हें कम करने का प्रयास किया जाये। क्योंकि अन्यायपूर्ण और रानजनीतिक व आर्थिक स्थिरता के परिणामस्वरुप विश्व में अस्थिरता फैल जाती है जिसको लम्बे समय तक बनायेनहीं रखा जा सकता है।

3.उत्पादकता:-मानव विकास का एक आवश्यक संघठक उत्पादकता है, क्योंकि विकास अर्थशास्त्र में मानव प्रयत्नों से उत्पादकता पर पड़े प्रभावों का ध्यान दिया जाता है। किसी भी देश में उत्पादकता को बनाये रखने व उसमें वृद्धि करने के लिए निवेश करना एक पूर्व निर्धारित शर्त है। लोगों के अधिकतम संभाव्य को उपयोग में लाने के लिए समष्टि आर्थिक पर्यावरण का सहायक होना जरुरी है, क्योंकि आर्थिक संवृद्धि मानव विकास मॉडलों का एक उप वर्ग है जो आवश्यक तो है परन्तु सम्पूर्ण संरचना नहीं है। इस प्रकार आधुनिक विकास मॉडलों का मुख्य आधार मानव पूँजी है। अर्थशास्त्रियगण इसको विकास का साधन मानते हैं। अतः मानव विकास, आर्थिक विकास का केन्द्र बिन्दु और अन्तिम लक्ष्य है।

4.सशक्तिकरण:-जब लोग अपनी स्वतंत्र इच्छा से विकल्पों के विषय में निर्णय लें सकेंगे, तबही इसे मानव विकास का सम्पूर्ण सशक्तिकरण माना जायेगा। साधारणतः सशक्तिकरण का अर्थ लोकतंत्र से है, जिसमें लोग अपने नियंत्रणों और नियमनों से स्वतंत्र हों व शक्ति के विकेन्द्रीकरण द्वारा देश में शासनके प्रत्येक स्तर पर वास्तविक शासन सम्भव हो सकेगा। देश में लोगों को सशक्त करने के लिए निम्नलिखित पहलुओं पर ध्यान देना होगा व उनके लिए प्रयास करना होगा।

- ✓ लोगों को सशक्त करने हेतु उनकी शिक्षा और स्वास्थ्य में निवेश करना चाहिए तभी लोग बाजार के अवसरों का पूर्ण लाभ उठा सकेंगे।
- ✓ लोगों को सशक्त करने के लिए ऐसा वातावरण तैयार करना होगा जिससे सभी व्यक्तियों की साख व उत्पादक परिसम्पत्तियों जैसी उत्पादक सम्बन्धी आवश्यकताओं की पूर्ति की जा सकेगी।
- ✓ सशक्तिकरण हेतु मानव को लिंग के आधार पर बाँटे बिना ही स्त्री-पुरुष दोनों को सशक्त करना चाहिए ताकि वे समान स्तर पर एक-दूसरे के साथ प्रतियोगिता कर सकेंगे।

5.जीवन निर्वाह:-प्रत्येक मानव को जीवन जीने के लिए कुछ आधारभूत आवश्यकताओं की पूर्ति होना आवश्यक है जिसमें भोजन, आवास, जल आपूर्ति व शिक्षा, स्वास्थ्य व संरक्षण आदि शामिल हैं। जीवन की गुणवत्ता को सुधारने हेतु आर्थिक विकास आवश्यक शर्त है। इस सम्बन्ध में माईकल पी. टोडारो ने लिखा है, **''प्रति व्यक्ति आय का बढ़ना, गरीबी का उन्मूलन, रोजगार के अवसरों की अधिकता, आय असमानता को घटना इत्यादि विकास की आवश्यक शर्तें हैं, परन्तु पर्याप्त नहीं।''** अतः स्पष्ट होता है कि जीवन की प्रत्येक आवश्यकताओं को महत्त्वही देना मानव विकास की आधारशिला है।

6.आत्म-सम्मान:-सभी लोग आत्म-सम्मान प्राप्त करने की इच्छा रखते हैं। आत्म-सम्मान का स्वरुप व आकार एक समाज से दूसरे समाज तथा एक संस्कृति से दूसरी संस्कृति में बदलता रहता है। इस आधुनिकीकरण के युग में धन और सम्पत्ति, आत्म-सम्मान का एक विश्वव्यापी मापदण्ड बन गया है। आजकल सभी देशों में भौतिक धन और आर्थिक शक्ति, आत्म-सम्मान के परिचायक बन गये हैं। सभी अल्प-विकसित देश आर्थिक विकास के माध्यम से आत्म-सम्मान प्राप्त कर सकते हैं, क्योंकि आर्थिक विकास ही आत्म-सम्मान का अनिवार्य पथ है। इस सम्बन्ध में डेनिस गौलिट कहते हैं, **''लक्ष्य के रुप में विकास तर्कसंगत है, क्योंकि सम्मान प्राप्ति के लिए यह केवल महत्त्वपूर्ण ही नहीं, अपितु अनिवार्य है।''**

7.स्वतंत्रता:- मानव विकास के संघठक के रुप में स्वतंत्रता बहुत महत्त्वपूर्ण है। यहाँ स्वतंत्रता का अर्थ राजनीतिक या सैद्धान्तिक रुप में नहीं अपितु आधारभूत व विस्तृत परिपेक्ष में है। स्वतंत्रता का अर्थ भौतिक प्रतिबन्धों, सामाजिक निषेधों, हठधर्मी विश्वासों, अज्ञानता तथा गरीबी से मुक्ति पाना है। इस सन्दर्भ में आर्थर लूईस कहते हैं कि, **"आर्थिक संवृद्धि का लाभ यह नहीं है कि धन, प्रसन्नता बढ़ाता है, अपितु मानवीय प्राथमिकताओं की श्रृंखला को बढ़ाता है।"** स्वतंत्रता से अभिप्रायः समाज एवं व्यक्तियों के विस्तृत प्रकार के अधिकारों को व्यक्त करना तथा विदेशी

निर्भरता व प्रतिबन्धों को कम करना है। आर्थिक विकास द्वारा समाज, भौतिक वातावरण पर नियंत्रण एवं शासन कर सकता है तथा अधिक मात्रा में वस्तुओं और सेवाओं को उपलब्ध करवाकर सदस्यों को अधिक आराम और स्वतंत्रता प्रदान करवा सकता है।

1.4.4 मानव विकास का मापन:-

जैसा कि आप जानते है कि विकास के आर्थिक मापों को आमतौर पर गैर आर्थिक सूचकों से जोड़ा गया है। इस सम्बन्ध में सामाजिक-आर्थिक विकास के विश्लेषण हेतु संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम द्वारा 1990 से लगातार प्रतिवर्ष मानव विकास रिपोर्टो का प्रकाशन किया जा रहा है। जिसका केन्द्र बिन्दु सभी देशो के लिए मानव विकास सूचकांक तैयार करना व इसको परिष्कृत करके श्रेष्ठ बनाना है। अब प्रश्न यह उठता है कि मानव विकास सूचकांक क्या है? तथा किसी देश के लिए इसको कैसे तैयार किया जाता है?

1.4.4.1 मानव विकास सूचकांक

मानव विकास सूचकांक, मानव विकास का सारांश मापक है। यह किसी देश में हुये मानव विकास से सम्बन्धित तीन आधारभूत आयामों की औसत उपलब्धि के रूप में मापा जाता है।

1.4.4.2 मानव विकास सूचकांक को बनाने की प्रक्रिया

अब आप जानते ही है कि मानव विकास सूचकांक तीन आयामों की औसत उपलब्धि है। तो आइए अब मानव विकास सूचकांक को तैयार करने की प्रक्रिया समझने का प्रयास करें। मानव विकास सूचकांक को बनाने की प्रक्रिया को आप निम्नलिखित कदमों के माध्यम से आसानी से समझ सकेंगे। इन्हे निम्नलिखित प्रकार से दर्शाया जा सकता है।

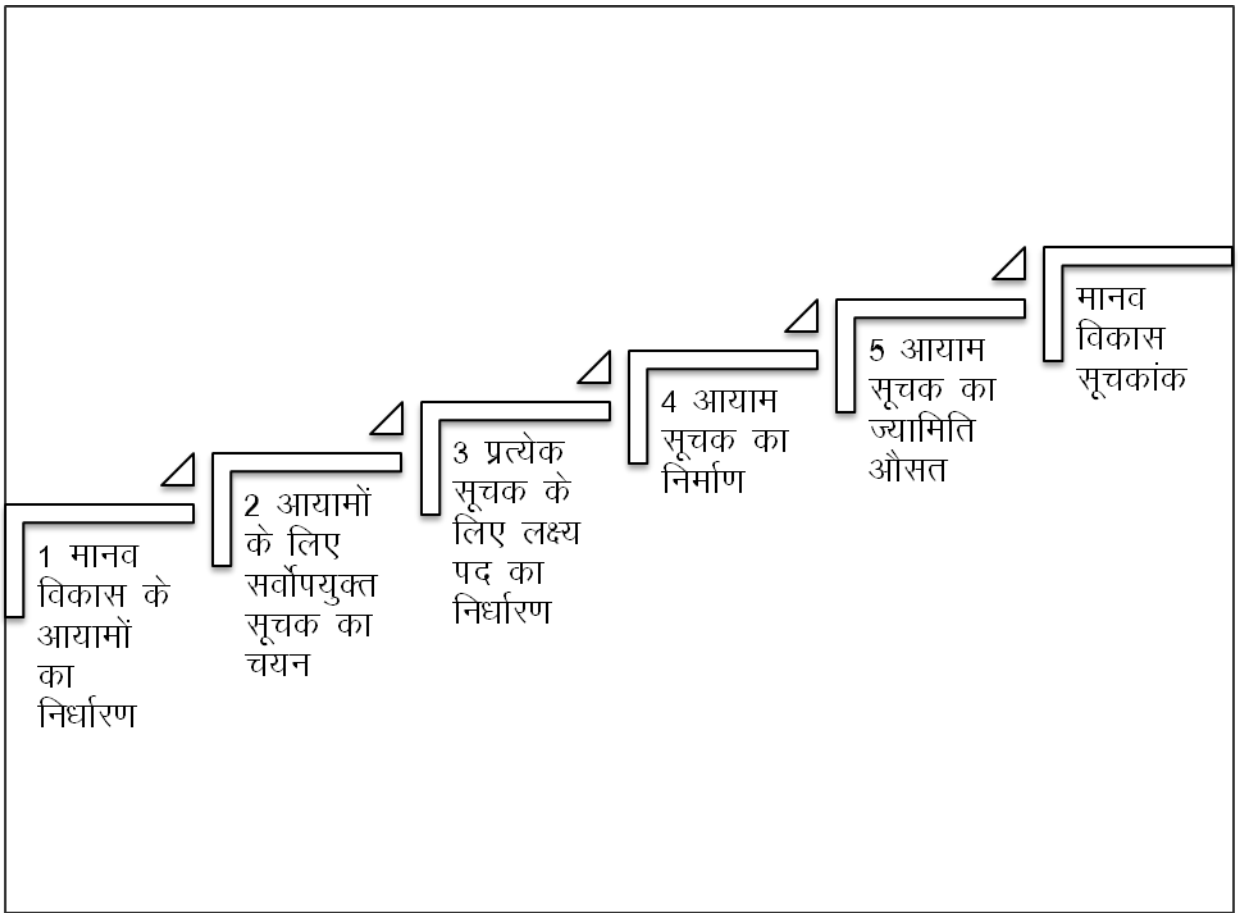

1.**मानव विकास के आयामों का निर्धारण:-** जैसा कि आप जानते है कि प्रत्येक मानव के सम्पूर्ण विकास में शिक्षा, स्वास्थ्य व उसकी आय सबसे महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करते है। इसीलिए इसदृष्टिकोण को लेकर महबूब उल हक ने मानव विकास सूचकांक तैयार करने के लिए तीन बुनियादी आयामों का प्रयोग किया वे है - लम्बा और स्वस्थ जीवन, ज्ञान व अच्छा जीवन स्तर।

2. **आयामों के लिए सर्वोपयुक्त सूचक का चयन:-** मानव विकास के आयामों के मापन हेतु निर्धारित आयामों के लिए सर्वाधिक उर्पयुक्त सूचक का चुनाव किया जाता है। चयनित आयामों को मापने के लिए महबूब उल हक ने जिन सूचको का प्रयोग किया वे निम्नलिखित है:-

I. एक लम्बा व स्वस्थ जीवन आयाम के मापन हेतु जन्म के समय जीवन प्रत्याशा सूचक का प्रयोग किया जाता है जोकि किसी देश के नागरिकों के स्वास्थ्य का द्योतक व आर्थिक विकास का परिचायक है।

II. ज्ञान आयाम के मापन हेतु स्कूली शिक्षा के औसत वर्ष व स्कूली शिक्षा के प्रत्याशित वर्ष दो सूचकों का प्रयोग किया जाता है।

III. एक अच्छा जीवन स्तर आयाम के मापन के लिए क्रय शक्ति समता के आधार पर यू0एस0डॉलर में प्रति व्यक्ति सकल राष्ट्रीय आय सूचक का प्रयोग किया जाता है।

जैसा कि आप जानते है कि विभिन्न देशों के आर्थिक विकास के मापक के रूप में मानव विकास सूचकांक का निर्माण 1990 से किया जा रहा है और इसको श्रेष्ठ बनाने के लिए, इसके आयामों में अभी तक कोई भी परिवर्तन नही किया गया है, परन्तु आयाम के सूचकों में 2010 से परिवर्तन कर दिया गया है। 2010 में प्रकाशित मानव विकास रिपोर्ट से पूर्व इसके ज्ञान व एक अच्छा जीवन स्तर आयामों के अलग सूचको का प्रयोग किया जाता रहा था। ज्ञान आयाम के लिए बालिग साक्षरता दर और सकल नामांकन अनुपान सूचकका प्रयोग किया जाता था। उपादान विश्लेषण के द्वारा जिन्हे क्रमशः दो तिहाई व एक-तिहाई वजन देकर शिक्षा सूचकांक तैयार किया जाता था। वहीं एक अच्छा जीवन स्तर आयाम के लिए अन्तर्गत क्रय शक्ति समता आय को समायोजित;।करनेजमकद्ध आय में परिवर्तित कर दिया जाता था। इसेक्रय शक्ति समता के आधार पर यू0एस0डॉलर में प्रति व्यक्ति सकल राष्ट्रीय आय कहा जाता था।

3.**अधिकतम मान किसी भी दो देशो या समयावधि के बीच सापेक्षित तुलना को प्रभावित नही करता प्रत्येक सूचक के लिए लक्ष्य पद का निर्धारणः-** इसके उपरान्त प्रत्येक चुनिन्दा सूचकों के लिए न्यूनतम व अधिकतम लक्ष्य पदो का निर्धारण किया जाता है। मानव विकास सूचकांक बनाने हेतु प्रत्येक आयाम में सम्मुचय हेतु ज्यामिति माध्य का प्रयोग किया जाता है। सभी सूचकों हेतु लक्ष्य पदों के अधिकतम मान को प्राप्त करने के लिए, देशो के उपलब्ध काल श्रेणी आंकड़ो के आधार पर अधिकतम वास्तविक अवलोकित मान का प्रयोग किया जाता है, क्योंकि है। जबकि न्यूनतम मान तुलना को प्रभावित करता है। इसीलिए न्यूनतम मान के निर्धारण हेतु उचित निर्वाह स्तर मूल्य या शून्य का प्रयोग किया जाता है।क्योंकि प्रत्येक आयाम सूचकों के सम्मत आयामों में सामार्थ्य के एवजी होते है। आनन्द व सेन ने आय के लिए वास्तविक लघुगुणक का प्रयोग किया है।मानव विकास सूचकांक हेतु निर्धारित सूचकों के लिए अधिकतम व न्यूनतम लक्ष्य पदो का निर्धारण किया जाता है।

सारणी1 में मानव विकास रिपोर्ट 2010 के अनुसार मानव विकास सूचकांक हेतु निर्धारित अधिकतम व न्यूनतम लक्ष्य पदों कों दर्शाया गया है

सारणी **1** मानव विकास सूचकांक हेतु निर्धारित अधिकतम व न्यूनतम लक्ष्य पद

सूचक	अधिकतम मान	न्यूनतम मान
जन्म के समय जीवन प्रत्याशा	83.2	20
स्कूली शिक्षा के औसत वर्ष	13.2	0
स्कूली शिक्षा के प्रत्याशित वर्ष	20.6	0
क्रय शक्ति समता के आधार पर यू0एस0डॉलर में प्रति व्यक्ति सकल राष्ट्रीय आय	1,08,211	163

4.**आयाम सूचक का निर्माणः-**अब अधिकतम व न्यूनतम निर्धारित लक्ष्य पदों की सहायता से प्रत्येक आयाम के लिए अलग-अलग आयाम सूचक निम्नलिखित सूत्र का प्रयोग करके तैयार किये जाते है।

आयाम सूचक =(वास्तविक मान-न्यूनतम मान)+(अधिकतम मान-न्यूनतम मान)

उपर्युक्त सूत्र का प्रयोग करने से प्रत्येक आयाम सूचक का मान 0 से 1 के बीच आता है।

5.**आयाम सूचक का ज्यामिति औसत**:-आयाम सूचक का सूत्र का प्रयोग करके प्रत्येक आयाम हेतु प्राप्त तीनों आयाम सूचकों का ज्यामिति मान ज्ञात किया जाता है। जिसे हम मानव विकास सूचकांक का मान कहते है।

$$\sqrt[3]{\text{Life Expectancy Index} * \text{Education Index} * \text{Gross National Income}}$$

Life expectancy index=जीवन प्रत्याशा सूचकांक

Education Index= शिक्षा सूचकांक

Gross National Income=सकल राष्ट्रीय आय

इस प्रकार अब आप किसी भी देश का मानव विकास सूचकांक का मान ज्ञात कर सकते हैं व ज्ञात मानो के आधार पर हम विभिन्न देशों के आर्थिक विकास की स्थिति की तुलना व विश्लेषण कर सकते है।

1.5 सारांश

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप जान चुके हैं कि विकास का मूल लक्ष्य मानवीय, प्राकृतिक, पूँजीगत तथा तकनीकि संसाधनों का विकास करके उत्पादकता का सृजन करना है तथा आर्थिक संवृद्धि में तीव्र गति, असमानता में कमी और गरीबी की समाप्ति होनी चाहिए। विकास के विभिन्न मापदण्ड हैं, जिसमें सबसे महत्त्वपूर्ण व प्रचलित मानदण्ड मानव विकास सूचकांक है। आज के युग में मानव विकास सूचकांक विकास का सबसे विश्वसनीय मापक माना जाना है। यह उन सभी चरों को आधार बनाता है जो सामाजिक क्षेत्र के विकास को प्रभावित करते हैं। यह दर्शाता है कि विकास हो रहा है तो समाज के निचले वर्गों के लोगों के जीवन स्तर में कितना सुधार हो रहा है और अब आप मानव विकास सूचकांक बनाने की प्रक्रिया से भी अवगत हो चुके हैं और किसी भी राष्ट्र के आर्थिक विकास को मापने के लिए निर्मित मानव विकास सूचकांक का स्वयं विश्लेषण कर सकते हैं।

1.6 शब्दावली:-

वास्तविक आय:- मौद्रिक आय की क्रय शक्ति को ही वास्तविक आय कहते हैं।

प्रति व्यक्ति आय:- कियी देश की राष्ट्रीय आय को वहाँ की जनसंख्या से विभाजित करके प्रति व्यक्ति आय प्राप्त की जाती है।

जीवन स्तर:- व्यक्ति, परिवार या व्यक्तियों के समूह की वह सीमा जिसमें वह अपनी सभी प्रकार की मूलभूत आवश्यकताओं को पूरा कर पाते हैं, उसे ही जीवर स्तर कहा जाता है।

जीवन सूचकांक की भौतिक गुणवत्ता:- जन्म पर जीवन प्रत्याशा, साक्षरता दर, और बाल मृत्यु दर जैसे तीन सामाजिक सूचकों का एक मिश्रित सूचकांक ही जीवन सूचकांक की भौतिक गुणवत्ताहै।

सामाजिक सूचक:- आर्थिक विकास के गैर आर्थिक सूचक ही सामाजिक सूचक है। जैसे जन्म दर जीवन प्रत्याशा, साक्षरता की दर, बालमृत्यु दर, प्रति 100 जनसंख्या पर उपलब्ध डॉक्टर आदि ।

उत्पादन विश्लेषण:- विश्लेषण की वह विधि जिसमें विभिन्न चरों को उनको उनके महत्त्वके अनुसार भार दिया जाता है।

आर्थिक कल्याण:- आर्थिक कल्याण समाजिक कल्याण का वह भाग है जिसे प्रत्यक्ष रुप से मुद्रा में नहीं मापा जा सकता है।

स्कूली शिक्षा के औसत वर्ष:- शिक्षा के प्रत्येक स्तर पर अधिकारिक अवधि का प्रयोग करते हुए शिक्षा प्राप्ति स्तरों से परिवर्तित करने पर 20 वर्ष अथवा उससे अधिक आयु वाले व्यक्तियों द्वारा प्राप्त शिक्षा के वर्षों की औसत संख्या।

स्कूली शिक्षा के प्रत्याशित वर्ष:- यदि (बच्चों) के जीवन-काल में, आयु विशिष्ट नामांकन दरों का विद्यमान ढाँचा स्थिर बना रहता है, तो बच्चों द्वारा स्कूल में प्रवेश के समय स्कूल में बने रहने के लिए प्रत्याशित वर्षों की संख्या।

प्रतिव्यक्ति सकल राष्ट्रीय आय:- एक अर्थव्यवस्था की सामूहिक आय, जो इसके उत्पादन एवं उत्पत्ति के साधनों के स्वामित्व द्वारा उत्पन्न की जाती है। इसमें से शेष विश्व के उत्पत्ति साधनों की आय को घटाया जाता है एवं इसको क्रय शक्ति समता दरों का प्रयोग करते हुए अन्तर्राष्ट्रीय डॉलर में परिवर्तित किया जाता है। तत्पश्चात् प्राप्त आय को मध्य वर्ष की जनसंख्या से विभाजित किया जाता है।

1.7 अभ्यास हेतु प्रश्न व उनके उत्तर:-

रिक्त स्थान भरिए -

1. किसी देश की अर्थव्यवस्था के सभी क्षेत्रों में.....के स्तर को बढ़ाना ही आर्थिक विकास है।
2. कार्ल मार्क्स ने .....को ही आर्थिक विकास का मापदण्ड माना।
3. शुम्पीटर ने आर्थिक विकास के प्रमुख साधन के रुप में स्फीतिकारी वित्त तथा .....को महत्त्वपूर्ण माना।
4. रिकार्डों की पुस्तक कानाम .....है।
5. एवरेट ई. हैगन ने ..... सामाजिक व व्यक्तिगत सूचकों का प्रयोग किया।
6. इर्मा एडलमैन और सिन्थिया टाफ्ट मॉरिस ने सामाजिक, आर्थिक व राजनीतिक तत्वों पर आधारित सूचकांक ..... वर्ष में तैयार किया।
7. विकासवादी अर्थशास्त्रियों ने किसी देश की कुल .....आय में वृद्धि को ही आर्थिक विकास का मापदण्ड माना था।
8. ''जीवन की भौतिक गुणवत्ता सूचक''को.....अर्थशास्त्रीने तैयार किया।
9. मानव विकास सूचकांक तैयार करनेमेंएक लम्बा व स्वस्थ जीवन आयाम के मापन हेतु .....सूचक का प्रयोग किया जाता है।
10. मानव विकास सूचकांक तीन आयामों की .....उपलब्धि है।

प्रश्नों के उत्तर

1. उत्पादकता 2. समाजवाद 3. नव प्रवर्तनों 4. Principles of Political Economy and Taxation 5. 11 6. 1967 7.वास्तविक 8.मॉरिस डी. मॉरिस 9. जन्म के समयजीवन प्रत्याशा 10. औसत

अभ्यास हेतु बहु-विकल्पीय प्रश्न

1. किसने कहा ‘‘भौतिक समृद्धि में ऐसा अनवरत् दीर्घकालीन सुधार है जोकि वस्तुओं और सेवाओं के बढ़ते हुए प्रवाह में प्रतिबिम्बित समझा जा सकता है।’’

क. मॉरिस डी. मॉरिस ख. ई. एलिस

ग. ओकुन व रिचर्ड्सन घ. शुम्पीटर

2. ‘‘जीवन की भौतिक गुणवत्ता सूचक’’ के सूचक है।

क. प्रत्याशित आयु ख.शिशु मृत्यु दर

ग. साक्षरता घ. उपर्युक्त सभी

3. मानव विकास सूचकांक किसके निर्देशन में संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम द्वारा 1990 में तैयार किया गया था।

क. ओकुन व रिचर्ड्सन ख.महबूब-उल-हक

ग. मॉरिस डी. मॉरिस घ. उपर्युक्त मेंसेकोईनहीं

4. महबूब-उल-हक ने मानव विकास प्रतिमान के लिए किन से अनिवार्य संघटकबताये थे।

क. औचित्य ख.सामर्थ्यता

ग. उत्पादकता और सशक्तिकरण घ. उपर्युक्त सभी

5. किसनेकहा ‘‘मानव अवसरों की सामर्थ्यता ही हमारी दिलचस्पी के केन्द्र में होनी चाहिए।’’

क. पॉल ए. बरन ख.महबूब-उल-हक

ग. ई. एलिस घ. उपर्युक्त मेंसेकोईनहीं

6. मानव विकास सूचकांक तैयार करने में ज्ञान आयाम के मापन हेतु किन सूचकों का प्रयोग किया जाता है।

क. जन्म के समय जीवन प्रत्याशा ख.सकल राष्ट्रीय आय

ग. स्कूली शिक्षा के औसत वप्रत्याशित वर्ष घ. उपर्युक्त मेंसेकोईनहीं

7. आयाम सूचक का सूत्र है।

क. (वास्तविक मान-न्यूनतम मान)+(अधिकतम मान-न्यूनतम मान)

ख.(वास्तविक मान-न्यूनतम मान)-(अधिकतम मान-न्यूनतम मान)

ग.(वास्तविक मान-न्यूनतम मान)*(अधिकतम मान-न्यूनतम मान)

घ. (वास्तविक मान-न्यूनतम मान)/(अधिकतम मान-न्यूनतम मान)

8. प्रत्येक आयाम सूचक का मान आता है।

क. 0 से 1 के बीच

ख.1 से 10 के बीच

ग.1 से 100 के बीच

घ. उपर्युक्त में से कोईनहीं

बहु-विकल्पीय प्रश्नों के उत्तर

1. ग. 2. घ. 3. ख. 4. घ. 5. ख. 6. ग. 7. घ. 8.क.

1.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची:-

1. तनेजा, एम.एल. एवं मॉयर, आर.एम. (2012), विकास का अर्थशास्त्र एवं नियोजन, विशाल पब्लिशिंग कम्पनी, जालंधर।

2. झिंगन, एम.एल. (2009), विकास अर्थशास्त्र एवं आयोजन, वृदा पब्लिकेशन प्रा.लि., नई दिल्ली, (चतुर्थदश संस्करण)।

3. सिंह, एस.पी. (1994), आर्थिक विकास एवं नियोजन, एस. चंद एण्ड कं. लि., नई दिल्ली, (4वाँ संस्करण)।

4. दत्त, गौरव एवं महाजन, अश्विनी (2016), भारतीय अर्थव्यवस्था, एस. चंद एण्ड कं. प्रा.लि., नई दिल्ली (55वाँ संस्करण)।

5. Meier, G.M. (1991), Leading issues in Economic Development, Oxford University Press, New Delhi (4th edition)

6. Todaro, M.P. and Smith, S.C. (2003), Economic Development, Pearson Edution, Asia (8th edition).

7. Agarwal, R.C. (2002), Economics of Development and Planning, Lakshmi Narain Agarwal, Agra.

8. Puri, V.K. and Misra, S.K. (2016), Economics of Development and Planning, Himalaya Publishing House, Mumbai (16th edition)

9. UNDP, Human Development Reports, Various issues.

10. Ministry of Finance, Government of Indian, Economic Survey, 2015-2016.

11. Dhingra, I.C. (1994), The Indian Economy, Sultan Chand and Sons, New Delhi.

12. Thirlwall, A.P. (2011), Economic of Development Palgrave Machmillan, London, 9th edition

13.सिन्हा, वी.सी. (2010), विकास और पर्यावरणीय अर्थशास्त्र, साहित्य भवन पब्लिकेशन, आगरा।

1.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1. विकास के विभिन्न मापो की विवेचना कीजिये?

2. मानव विकास का क्या अर्थ है?

3. किसी देश के मानव विकास मे कैान-कैान से संघटक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं?

4. मानव विकास सूचकांक किसे कहतेहै? इसकी रचना विधि को समझाईये?

इकाई 2

सतत विकास के सिद्धांत

इकाई की रूपरेखा

2.1 उद्देश्य

2.2 प्रस्तावना

2.3 सतत विकास क्या है?

2.4 सततशीलता एवं विकास

2.5 सतत विकास की उत्पत्ति एवं इतिहास

2.6 सहस्राब्दि विकास लक्ष्य

2.7 संयुक्त राष्ट्र सतत विकास के वैश्विक लक्ष्य

2.8 सतत विकास के मुख्य सिद्धांत

2.9 सतत विकास दृष्टिकोण की सीमाएं और लाभ

2.1 उद्देश्य:

प्रस्तुत इकाई में सतत विकास संकल्पना के मुख्य उद्देस्य, क्रम-विकास तथा सतत विकास के सिद्धांतों पर चर्चा है। प्रस्तुत इकाई के अध्यन के बाद आप बता सकते हैं कि सतत विकास की आवस्यकता क्यों है एवं इसके मुख्य सिद्धांतक्या हैं?

2.2 प्रस्तावना

विकास को बढती सभी मुसीबतों का एक्रयात्र उपाय माना जाता है तथा शुरू में औद्योगिक विकास के विचार को भी समाज की सभी समस्याओ और बुराइयों को समाप्त कर नेवालेविचार के रूप में प्रसारित किया गया था, परन्तु उससे सतत विकास पाना असंभव था एवं इसके लिए जो नीतियाँ एवं विधियाँ अपनायी गयी वोमानव के अस्तित्व के लिए ही खतरा बन गयी। इन खतरों पर जब विश्व का ध्यान गया तो इस नीति की जगह पर सतत विकास का सिद्धांत प्रस्तुत किया गया।

2.3 सतत विकास क्या है?

सतत विकास मानव विकास लक्ष्यों को पूरा करने के लिए संगठित सिद्धांतहै, यह प्राकृतिक प्रणालियों द्वारा प्राकृतिक संसाधनों और पारिस्थिति की तंत्र सेवाएं प्रदान करने की क्षमता को बनाए रखने पर जोर देता है। सतत विकास की अवधारणा आर्थिक विकास, पर्यावरण की गुणवत्ता, और सामाजिक समानता केबीच संबंधों की खोज करतीहै ।सतत विकास या संधारणीय विकास का अभिप्रायहै, ऐसे विकास से है जो पर्यावरण के निम्नीकरण के बिना संतोषजनक विकास करता हो दूसरे शब्दों में सतत विकास वह प्रक्रिया हैजो हमारी भावी पीढ़ियों कीअपनीजरूरतें पूरीकरनेकीयोग्यताको प्रभावित किए बिना वर्तमान समय की आवश्यकताएं पूरी करे।सतत विकास सामाजिक-आर्थिक विकास की वह प्रक्रिया है जिसमें पृथ्वी की सहनशक्ति के अनुसार विकास की बात की जातीहैं।

2.4 सततशीलता एवं विकास (Sustainibility and Development)

प्रकृति ने हमेशा से ही यहाँ के प्राणियों को वो सब दिया है जिसकी उनको पृथ्वी पर जीवितरहनेके लिए आवस्यकता पड़ती है जैसे वायु, जल, भोजन और जीवितरहनेके लिए उपयुक्त वातावरण। हमारी अर्थव्यवस्था को सुदृढ़ एवं गतिशील बनाये रखने के लिए प्राकृतिक संसाधनों कीआवस्यकताहोती है जो हमे प्रकृति से ही प्राप्त होते हैं। प्रकृति एवं जीवो के बीच में हमेशा से एक संतुलन रहा है तथा यह संतुलन हमेशा बना रहना चाहिए। प्रकृति कीभी सहने की एक क्षमता होती है तथा संसाधनों को उपलब्ध कराने की भी एक सीमा होती है।किन्तु मनुष्य के लालच एवं महत्वकांक्षाओ की वजह से इन प्राकृतिक संसाधनों का जरुरत से ज्यादा दोहन होताहै, जिसकी वजह से ये संसाधन हमारी भविष्य की पीढ़ियों को उपलब्ध नहीं होंगे।इससे न केवल मनुष्य के किन्तु पृथ्वी पर रहने वाले अन्य जीव जन्तुवों के अस्तित्व पर भी खतरा मंडरा रहा है।जरुरत से अधिक दोहन की वजह से प्राकृति क परिस्थितियों में तीव्र बदलाव देखने को मिल रहे हैं।तेजी से हो रहे प्राकृतिक परिवर्तनों का सामना करने की प्रकृति की भी एक सीमित क्षमता है। प्रकृति में आये किसी एक बदलाव को अपने वास्तविक प्रारूप में वापसआने में हजारों वर्षो का समय लगता है इसलिए हमे ही ऐसे कुछ प्रयास करने होंगे जिनसे हम प्रकृति में आर हे बदलावों को धीमा कर सकें ताकि हमारी आने वाली पीढ़ी भी जीवित रह सके एवं प्राकृतिक संसाधनों का समुचित उपयोग कर सकें।इसे प्राकृतिक, पारिस्थितिकतंत्र या पर्यावरण की सततशीलता के रूप में जाना जाता है। प्रकृति का स्वस्थ रहना पृथ्वी के सभी जीवो के लिए नितांत आवश्यक है।खपत और औद्योगि कीकरण के पुराने तंत्र दुनिया की बढ़ती आबादी का समर्थन नहीं कर सकते।यदि मनुष्य को जीवित रहना है, तो उसे पानी, दैनिक उपयोगकी वस्तुओ और प्राकृतिक संसाधनों को बढ़ाना होगा, जिसके लिए उसे एक नया दृष्टिकोणअपनाना होगा।

2.4.1 सततशीलता (Sustainibility)

शब्द "सततशीलता" को विभिन्न रूप से परिभाषित किया गयाहै, जैसे कि:

- सततशीलता एक परिभाषित व्यवहार को अनिश्चितकाल तक जारी रखने या कहें स्थिर रखने की क्षमताहै।
- प्राकृतिक संसाधनों का इस तरह से उपयोग किया जाना कि वो पृथ्वी के पारिस्थितिक तंत्र की वहन और उत्पादक क्षमता को प्रभावित न करे।
- सततशीलता के लिए एक न्यूनतम आवश्यक शर्त वर्त मान स्तर प रया उससे ऊपर कुल प्राकृतिक पूंजीगत भण्डार का रखरखाव है।
- 'सततशीलता' की परिभाषा यह है कि कैसे प्राकृतिक प्रणाली कार्य करती है, विविध रहती है और संतुलन में रहने के लिए पारिस्थिति की के लिए आवश्यक सभी चीजों का उत्पादन करती है।

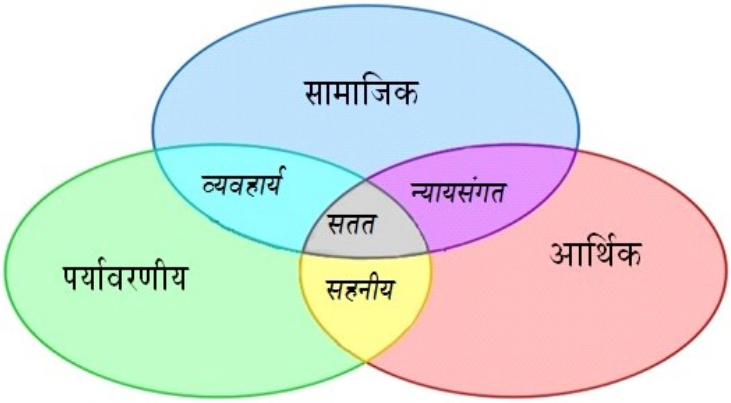

सततशीलता को अक्सर जैविक प्रणाली के सहन करने की क्षमता, उत्पादकता एवं विवधता से परिभाषित किया जाता है।लेकिन, सततशीलता की 21 वीं शताब्दी की परिभाषा इन संकीर्ण मानकों से काफी दूरहै।आज, यह मानव जातिऔरपृथ्वी की प्राकृतिक प्रणालियों को जीवित रखने के लिए आवश्यक सतत प्रति रूप विकसित करने की आवश्यकता को दर्शाता है।इन ऊंचे लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए, मनुष्यों को अपनी पर्यावरण संरक्षण, सामाजिक उत्तरदायित्व एवं आर्थिक अभ्यास नीतियों की फिर से जांचकरनी होगी।

i. **पर्यावरणीय सततशीलता:** यह अक्षय संसाधन उपयोग, प्रदूषण, और गैर नवीकरणीय संसाधनों कीकमी की दर को बनाए रखने की क्षमता है जिसे अनिश्चित काल तक जारी रखा जा सकता है।।
ii. **सामाजिक सततशीलता:** यह एक सामाजिक प्रणाली की क्षमता है, जैसे एक देश, सामाजिक स्तर पर परिभाषित स्तर पर कार्य करने के लिए अनिश्चित काल तक कार्य करता है।
iii. **आर्थिक सततशीलता:**यह अनिश्चित काल तक आर्थिक उत्पादन के परिभाषित स्तर का समर्थन करने की क्षमता है।

2.4.2 विकास (Development)

'विकास' शब्द का अर्थ व्यापक रूप से सामाजिक और आर्थिक उन्नति है। विकास का अर्थ होता है मूल भूत सुविधाओं में वृद्धि विकास में स्थायी परिवर्तन का अर्थ भी है ।एक बेहतर जीवन के लिए नए अवसर, रोजगार, समृद्धि और विकल्पों की बढ़ोतरी के लिए विकास की जरूरत पड़ती है। यह पारिस्थिति की तंत्र एवं प्राकृतिक पर्यावरण की समग्र वृद्धि को भी प्रदर्शित करता है। विकास लोगों के कल्याण में सुधार से कहीं अधिक है, यह आर्थिक, राजनीतिक

और सामाजिक प्रणालियों की क्षमता को विकसित करना है ताकि यह उस निरंतर कल्याण के लिए परिस्थितियों की प्रणाली की क्षमता को बनाया रखा जा सके।विकास के फल स्वरूप राष्ट्र सशक्त होता है एवं समग्र विकास उसे अधिक निर्णायक बनाता है।

2.4.3आर्थिक उन्नति एवं आर्थिक विकास(Economic Progress and Economic Development)

किसी भी राष्ट्र के समाज के सततशीलता हेतु उसका आर्थिक रूप से सुदृढ़ होना आवश्यक हैएवं आर्थिक विकास हेतु आर्थिक उन्नति की आवस्यकता होती है।सतत विकास ऐसा होना चाहिए जो समावेशी हो एवं जिसका लाभ समाज के आखिरी व्यक्ति तक पहुंचे। इस प्रकार से आर्थिक विकास सतत विकास के लिए आवश्यक है तथा आर्थिक विकास सतत विकास में निहीत है ।आईये जानते हैं आर्थिक उन्नति एवं आर्थिक विकास में मुख्य अंत रक्या है:

आर्थिक विकास अर्थशास्त्र की एक शाखा है जो लंबी अवधि के आर्थिक उन्नति के व्यापक आर्थिक कारणों और व्यष्टि अर्थशास्त्र (microeconomics) के अध्ययन से संबंधित है । आर्थिक उन्नति अर्थव्यवस्था में उत्पादित सभी चीज़ों के मूल्य में वृद्धि को दर्शाता है। इसका मतलब यह है कि देश के जीडीपी या जीएनपी में सालाना वृद्धि प्रतिशत।यह एक अवधि में, प्रति व्यक्ति राष्ट्रीय उत्पाद में वृद्धि के बारे में बताताहै, अर्थात् आर्थिक उन्नति तब मानी जाएगीजब कुल उत्पादन में वृद्धि की वृद्धि दर, जनसंख्या वृद्धि दर से अधिक हो।

तालिका 01:आर्थिक उन्नति एवं आर्थिक विकास में अंतर

तुलना के लिए आधार	आर्थिक उन्नति	आर्थिक विकास
अर्थ	आर्थिक विकास समय की एक विशेष अवधि में देश के वास्तविक उत्पादन में सकारात्मक बदलाव है।	आर्थिक विकास में प्रौद्योगि की उन्नति, जीवन स्तर में सुधार और इतने पर एक अर्थव्यवस्था में उत्पादन के स्तर में वृद्धि शामिल है।
संकल्पना	संकीर्ण	विस्तृत
क्षेत्र	सकल घरेलू उत्पाद, प्रति व्यक्ति आय आदि जैसी संकेत कों में वृद्धि	जीवन प्रत्याशादर, शिशु मृत्यु दर, साक्षरता दर और गरीबी दर में सुधार।
अवधि	लघु अवधि प्रक्रिया	दीर्घ कालिक प्रक्रिया
उपयुक्त	विकसितअर्थव्यवस्था	विकसितअर्थव्यवस्था
यह कैसे मापाजा सकता है?	राष्ट्रीयआय में बढ़ोतरी	वास्तविक राष्ट्रीय आय में बढ़ोतरी
किस प्रकार के परिवर्तन की उम्मीदहै?	मात्रात्मक परिवर्तन	गुणात्मक और मात्रात्मक परिवर्तन
प्रक्रिया का प्रकार	स्वचालित	मनुष्यद्वारा
यह कब दिखता है?	एक निश्चित समय अंतराल में	सतत प्रक्रिया

आर्थिक उन्नति में राष्ट्रीय या प्रति व्यक्ति आय और उत्पाद में वृद्धि का उल्लेख है। अगर किसी देश में मालऔ र सेवाओं का उत्पादन बढ़ जाता है, तो इसका मतलब है देश ने आर्थिक उन्नति हासिल की है और इस के साथ-साथ औसत आमदनी बढ़ जाती है। इस दृष्टिकोण से, आर्थिक उन्नति का मतलब अर्थ व्यवस्था के आकार या गति में वृद्धि है जैसे कि अधिक उत्पाद और से वाएं उत्पादित की जाती हैं ।आर्थिक विकास काअर्थ है, विशेष रूप से स्वास्थ्य, शिक्षा और मानव कल्याण के अन्य पहलुओं में सुधार ।जो देश अपनी आय में वृद्धि करते हैं लेकिन जीवन प्रत्याशा भी बढ़ाते हैं, शिशु मृत्यु दर को कम करतेहैं, और विकास के कुछ महत्वपूर्ण पहलुओं से साक्षरता दर में कमी नहीं कर रहे हैं।

आर्थिक उन्नति को अक्सर आर्थिक विका समान लिया जाता है, जिसे किसी देश या किसी विशेष क्षेत्र के निवासियोंके कल्याण के लिए आर्थिक धन में वृद्धि के रूप में परिभाषित किया जाता है। यहां आपको यह जानना चाहिए कि आर्थिक विकास एक आवश्यक है, लेकिन आर्थिक उन्नति के लिए एक मात्र शर्त नहीं है। यह समय के साथ एक अर्थव्यवस्था का सकल घरेलू उत्पाद (सकल घरेलू उत्पाद) या प्रति व्यक्ति जीडीपी में वृद्धि है । इसलिए, यह विकास का केवल एक पहलू है जो व्यक्तियों की आय है। वहीं दूसरी ओर आर्थिक विकास एक बहु-आयामी अवधारणा है, जिसमें आय, स्वास्थ्य, शिक्षा, मतदान अधिकार आदि शामिल हैं । यह अवधारणा व्यक्तियों के समग्र विकास पर केंद्रित है।

2.4.4समावेशी विकास (Inclusive development)

समावेशी विकास का मतलब आर्थिक विकास है जो रोजगार के अवसर पैदा करता है और गरीबी को कम करने में मदद करता है।इसका मतलब है गरीबों द्वारा स्वास्थ्य और शिक्षा मेंआवश्यक सेवाओं तक पहुंच बनाना ।इसमें अवसर की समानता प्रदान करना, शिक्षा और कौशलविकास के माध्यम से लोगों को सशक्त बना नाशा मिल है। इस सिद्धांत का मुख्य उद्देश्य समाज के सभी वर्गों हेतु अवसर पैदा करना और दोनों मौद्रिक और गैर-मौद्रिक में बढ़ी समृद्धि के लाभांश को समाज में बराबर अनुपात में वितरित करना है।इस अवधारणा का कहना है कि विकास के फल समाज के गरीब वर्ग तक पहुँचने कीबात कही गयी है, इसलिए इसे "समावेशीविकास" कहा गया है।

2.4.4.1समावेशी विकास सूचकांक (Inclusive development index)

22 जनवरी, 2018 को विश्व आर्थिक मंच (WEF) द्वारा समावेशी विकास सूचकांक (The Inclusive Development Index-2018) जारी किया गया । इस सूचकांक में विश्व की 103 अर्थव्यवस्थाओं (देशों) को शामिल किया गया है। सूचकांक 'जीवितमानकों, पर्यावरणीय सततशीलता और भविष्य की पीढ़ियों के आगे ऋणग्रस्तता से संरक्षण' को ध्यान में रखकर बनाया गयाहै ।इसमें वृद्धि और विकास, समावेश, और अंतर-पीढ़ी गत न्याय सम्यता को दो भागों में विभाजित किया गया है। पहले भाग में 29 उन्नत अर्थव्यवस्थाएं और दूसरे 74 उभरती हुई अर्थ व्यवस्था एंशा मिल हैं। सूचकांक ने अपने समग्र समावेशी विकास विकास स्कोर के पांच साल के रुझान के

अनुसार देशों को पांच उप-श्रेणियों में वर्गीकृत किया है। समावेशी विकास सूचकांक (IDI) यह उपाय करता है कि देश जीडीपी के अतिरिक्त आर्थिक प्रगति के ग्यारह आयामों पर कैसेप्र दर्शन करते हैं।इस सूचकांक में शीर्ष पर नॉर्वे के बाद आयरलैंड, लक्ज़मबर्ग, स्विट्जरलैंड और डेनमार्क को रखा गया है जबकि भारत को 62 वे स्थान पर रखा गया है।

2.4.5सततविकास (Sustainable Development)

इसका मतलब है कि वर्तमान पीढ़ी की जरूरतों के साथ समझौता किए बिना, भविष्य की पीढ़ी की जरूरतों को ध्यान में रखते हुए, पर्यावरण को नुकसान पहुंचाए बिना, विकास होना चाहिए। यह अवधारणा एक ऐसे विकास की परिकल्पना है जो पर्यावरणीय, सामाजिक और आर्थिक व्यवस्थाओं की परस्पर निर्भरता और लोगों के सशक्तिकरण और वैश्विक नागरिकता की भावना के माध्यम से समानता और न्याय को बढ़ावा देती हो। इस अवधारणा के अनुसार संसाधन उपयोग का एक रूप है जिसका उद्देश्य पर्यावरण की रक्षा करते हुए मानव की जरूरतों को पूरा करना है ताकि ये वर्तमान के साथ-साथ भविष्य में आने वाली पीढ़ियों को भी मिले।

2.4.5.1सतत विकास सूचकांक (Sustainable Development Index)

यह सूचकांक देशों को निर्धारित लक्ष्यों को पूरा करने में आर ही मुश्किलों और खामियों को रेखांकित करता है, ताकि उन पर ध्यान देकर वे अपनी प्राथमिकताएं तय कर सकें और लक्ष्यों को 2030 तक पूरा कर सकें। यह सूचकांक दिखाता है कि वे कैसा प्रदर्शन कर रहे हैं और उन देशों में कैसे कार्य सूची 2030 लागूकीजासकती है तथा इन महत्वाकांक्षी लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए किस प्रकार की तत्काल और व्यापक कार्रवाई की आवश्यकता है ।

2.5 सततविकासकीउत्पत्तिएवंइतिहास

सततविकास की अवधारणा ने पूरे विश्व में विकास की परिभाषा को बदल दिया।सतत विकास एक बहुआयामी अवधारणा है, जिसकी शुरूआत वैज्ञानिक रॉक लकारसन की पुस्तक *दी साइलेंटस्प्रिंग* (The Silent Spring) के 1962 में प्रकाशित होने के पश्चात हुई,जिसमें एक कीटनाशक डी.डी.टी. (*Dichloro Diphenyl Trichloroethane*) के प्रयोग से वन्य जीवन पर होने वाले हानिकारक प्रभावों का उल्लेख किया गया था ।यह पुस्तक तब आयी जब औद्योगिक क्रांति चरमपर थी और लोग औधौगीकरण के पर्यावरण पर हानिकारक प्रभावों से अनभिज्ञ थे ।इस पुस्तक को सतत विकास की दिशा में एक मील का पत्थर माना जाता है। इसके पश्चात सतत विकास की अवधारणा का उदभव मुख्यतःउत्पादन –प्रणालियों पर नियंत्रण करने वाले कुछ लोगों द्वारा प्रकृति के बहुमूल्य तथा सीमित संसाधनों के लालच पूर्ण दुरूप्रयोग के कारण प्राकृतिक संसाधनों की समाप्ति तथा उस के कारण आर्थिक क्रियाओं तथा उत्पादन प्रणालियों के धीमे होने या प्राकृति क संसाधनों के ख़त्म होने के भय से हुआ। 1969 मेंगैर-लाभकारी संस्था 'फ्रेंड्स ऑफ़दी अर्थ' (Friends of the earth) बनाई गई जिसे पर्यावरण की सुरक्षा हेतु एवं निर्णय प्रक्रिया में नागरिकों की भागीदारी को सुनिश्चित करने हेतु समर्पित किया गया। 1971 में आर्थिक सहयोग तथा विकास संगठन (OECD) ने "प्रदूषकखर्चादें" (Polluter Pays Principle) का सिद्धांत दिया जिसमें यह कहा गया कि

प्रदूषण फैलाने वाले देशों को उसकी कीमत देनी चाहिए।पहली बार 1972 में स्वीडन की राजधानी स्टॉक होम में मानव पर्यावरण पर आयोजित संयुक्त राष्ट्र सम्मेलन (UNCHE) में विश्व समुदाय में इस बात पर सहमति हुई कि मानव पर्यावरण और प्राकृतिक संसाधनों में भारी गिरावट आई है एवं पर्यावरण संकट एकगंभीर मसला है। इस विचार को पहली बार अंतराष्ट्रीय कार्य सूची में शामिल किया गया। इससे 'संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण कार्यक्रम' (UNEP) की स्थापना हुई। निदेशक मौरिसस्ट्रांग ने पर्यावरण विकास (Eco development) शब्द दिया जो विकास को पर्यावरण सुरक्षा के साथ जोड़ता है। संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण कार्यक्रम अंतर्राष्ट्रीय समुदाय के लिए पर्यावरण रणनीतियों को विकसित करने के उद्देस्य से संयुक्त राष्ट्र द्वारा दिसंबर,1983 में एक आयोग का गठन किया गया था, जिसका नाम 'पर्यावरण और विकास विश्व आयोग' था।इस समिति में २२ सदस्य थे जो दोनों विकसित एवं विकासशील देशो का प्रतिनिधित्व करते थे तथा इस आयोग की अधक्ष्यता नॉर्वे की पूर्व प्रधानमंत्री श्रीमती ग्रोहर्ले मब्रंटलैण्डने की थी जिस वजह से इसे 'ब्रंटलैण्ड आयोग' भी कहा जाता है। उन की रिपोर्ट '*अवरकॉमनफ्यूचर*' (Our Common Future) के नाम से अक्टूबर, 1987 में प्रकाशित हुई।सबसे पहले सतत विकास की परिभाषा इसी आयोग ने दी थी।उनके अनुसार स्थायी विकास का अभिप्राय आर्थिक विकास के साथ-साथ पर्यावरण को सुरक्षित करना है।इस रिपोर्ट ने सतत विकास को मजबूती से राजनीतिक अंतर्राष्ट्रीय विकास सोच में सम्मिलितकरने में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। इस रिपोर्ट में कहा गयाहै कि विकास हमारी आज की जरूरतों को पूरा करे, साथ ही आने वाली पीढियों की जरूरतों की भी अनदेखी न करे।आयोगका कहना है कि, सतत विकास न केवल पर्यावरण से सामंजस्य लाना है बल्कि यह एक परिवर्तन की प्रक्रिया है जिसमें संसाधनों का दोहन, निवेश की दिशा, तकनीकि विकास की स्थिति, तथा संस्थात्मक परिवर्तनों को वर्तमान के साथ-साथ भविष्य की आवश्यकताओं के भी अनुकूल बनाया जा सके। सतत विकास प्राकृतिक संसाधनों जैसे कोयला, तेल तथा जलके दोहन के लिए उत्पादन तकनीकों, औधोगिक प्रक्रियाओं तथा विकास की न्यायोचित नीतियों के संबंध में दीर्घकालीन योजना प्रस्तुत करता है। यह आर्थिक विकास की दौड के प्रति विश्व को सचेत करता है कि विकास प्राकृति क संसाधनों को नष्ट कि ये बिना एवं पर्यावरण को क्षति पहुंचाये बिना हो। सतत विकास यह सुनिश्चितकरता है कि परिस्थिति की व्यवस्थाओं की सहनशीलता क्षमताओं के अनुरूपमानव जीवन की गुणवत्ता में सुधारलायाजास के एवं ऐसी आर्थिक उन्नति हो जो पृथ्वी के सीमित संसाधनों को नष्ट किए बिना, विश्व के सभी लोगों को न्याय तथा समान अवसर प्रदान करे।

ब्रंडलैंड की परिभाषा में एक महत्व पूर्ण तत्व पर्यावरण और विकास की एकता है। ब्रंडलैंड आयोग मानव पर्यावरण पर 1972 स्टॉकहोम सम्मेलन के दावे के खिलाफ तर्क देता है और प्रकृति संरक्षण के लिए अंतरराष्ट्रीय संघ की 1980 के विश्व संरक्षण रणनीति की तुलना में, सतत विकास पर एक वैकल्पिक दृष्टिकोण प्रदान करता है। ब्रंडलैंड आयोग ने इसपरजोरदियाकि "पर्यावरण" को पहले मानव भावना या कार्रवाई से अलग एक क्षेत्र के रूप में माना जाता था, और "विकास" एक शब्द था जिसे राजनीतिक लक्ष्यों या आर्थिक प्रगति का वर्णन करने के लिए इस्तेमाल किया गया था, यह समझने के लिए अधिक व्यापक है एक दूसरे के संबंध में दो शब्द (हम विकास के संबंध में पर्यावरण को बेहतर समझ सकते हैं और हम पर्यावरण के संबंध में विकास को बेहतर समझ सकते हैं, क्योंकि वे अलग-अलग संस्थाओं के

रूप में अलग नहीं हो सकते)। ब्रंडलैंड का तर्क है कि "पर्यावरण" वह है जहां हम रहते हैं और "विकास" यही है जो हम सभी उस निवास के भीतर अपनी तकदीर को सुधारने के प्रयास में करते हैं तथा दोनों अविभाज्य हैं। 1992 के रियो पृथ्वी शिखर सम्मेलन के बाद से सतत विकास नेखुद को सारी अवधारणाओं के केंद्र के रूप में स्थापित किया है तथा यह अवधारणा अंतराष्ट्रीय विकासवादी सम्मेलनों तथा कार्यक्रमों की सबसे महत्वपूर्ण सामाजिक आर्थिक अवधारणाबन गई है। इस सम्मेलन में ही विश्वरा जनीति में पर्यावरण को एक ठोस स्वरूप मिला। इस अवसर पर कार्य सूची-21 (Agenda-21) पारित किया गया। सभी राष्ट्रों से निवेदन किया गया कि वह प्राकृतिक संतुलन को बनाए रखें, पर्यावरण के प्रदूषण को रोके तथा सतत विकास का रास्ता अपनाएं। 'ब्रन्टलैण्ड आयोग की रिपोर्ट के पश्चात सतत विकास के काय्रक्रमों को प्रभावी रूप से लागू करने के लि एसंयुक्त राष्ट्र द्वारा दिसम्बर, 1992 में संयुक्त राष्ट्र सतत विकास आयोग का गठन किया गया। संयुक्त राष्ट्र संघ के वर्ष 2000 के सहस्त्राब्दि शिखर सम्मेलन में सहस्राब्दी विकास लक्ष्यों की घोसणा की तथा इसी क्रम में 2002 में जोहान्सबर्ग में सतत विकास पर विश्व सम्मेलन, 2005 में कनाडा के मोंट्रियल शहर में संयुक्त राष्ट्र जल वायु परिवर्तन सम्मेलन, 2006 में न्यूयोर्क में वनों के सतत विकास पर संयुक्त राष्ट्र सम्मेलन तथा दिसम्बर, 2007 में इंडोनेशिया के बाली द्वीप में जलवायु परिवर्तन पर सम्मेलन आयोजित किया गया। सतत विकास की प्रासंगिकता जून 2012 में रिओ पृथ्वी सम्मलेनके 20 वर्ष पूर्ण होने क उपलक्ष्य में संयुक्तराष्ट्र द्वारा आयोजित "रिंयो + 20" सम्मेलन में भी उभर कर आयी।सन 2015 में के पश्चात सहस्राब्दी विकास लक्ष्यों का स्थान वैश्विक सतत विकास लक्ष्यों ने ले लिया।

2.6 सहस्राब्दि विकास लक्ष्य (Millennium Development Goals)

संयुक्त राष्ट्र संघ केवर्ष 2000 के सहस्त्राब्दि शिखर सम्मेलन में वैश्विक विकास की मुख्य चुनौतियों कासामना करनेकेलिए 8 वैश्विक विकास लक्ष्य निर्धारित किये गये थे जिन्हें सहस्राब्दी विकास लक्ष्य' (Millennium Development Goals (MDGs)) कहा जाता है। इन आठ लक्ष्यों को 2015 तक प्राप्त करने की योजना बनाई गई थी। सितंबर 2000 में संयुक्त राष्ट्र सहस्त्राब्दि शिखर सम्मेलन में 189 देशों के 147 राष्ट्राध्यक्षों ने इस योजना पर सहमति जताई और इस पर हस्ताक्षर किए ।सहस्त्राब्दि घोषणापत्र के लक्ष्यों और कार्यक्रम के अनुसार, उक्त आठ सहस्त्राब्दि विकास लक्ष्यों के तहत् 21 विशिष्ट लक्ष्य निर्धारित किए गए थे ।वे आठ मुख्य लक्ष्य इस प्रकार थे-

1 .अत्यधिक गरीबी और भूख को समाप्त करना,

2 .सार्वभौम प्राथमिकशिक्षा,

3 .लैंगिक समानता और महिला सशक्तिकरण,

4 .शिशु मृत्यु दर में कमी लाना,

5 .माता के स्वास्थ्य में सुधार लाना,

6 .एचआईवी एड्स, मलेरिया एवं अन्य बीमारियों से बचाव,

7 .सतत्पर्यावरणीय सुधार (जल एवं स्वच्छता) और

8 .विकास के लिए वैश्विक सहभागिता।

सहस्त्राब्दि विकास लक्ष्य 1990 के दशक में हुए विश्व शिखर सम्मेलनों में प्रस्तुत किए गए वायदों और लक्ष्यों का ही प्रतिनिधित्व करता था। विश्व के सामने विकास की मुख्य चुनौतियों और समाज की आवश्यकताओं के अनुरूप सहस्त्राब्दि विकास लक्ष्यों में चरम गरीबी और भुखमरी उन्मूलन, शिक्षा को बढ़ावा देने, लैंगिक समानता, मातृ स्वास्थ्य और शिशु मृत्यु दर को घटाने के साथ-साथ एचआईवीएड्स एवं अन्य बीमारियों से बचाव, पर्यावरण सुधार तथा विकास हेतु वैश्विक भागीदारी के कार्यक्रम शामिल थे।

2.7 संयुक्त राष्ट्र सतत विकास के वैश्विक लक्ष्य (Sustainable Development Goals)

संयुक्त राष्ट्र सतत विकास के वैश्विक लक्ष्य (Sustainable Development Goals) वैश्विक विकास एवं समृद्धि की एक सार्वभौमिक रूप रेखा हैं, जिसमें सभी 193 संयुक्त राष्ट्र के सदस्य राज्यों ने हस्ताक्षर किए हैं।सतत विकास लक्ष्यों जिन्हे वैश्विकलक्ष्यों के नाम से भी जाना जाता है, गरीबी खत्म करने, पृथ्वी की रक्षा करने और सभी लोगों को शांति और समृद्धि का आनंद दिलाने के लिए कार्रवाई करने के लिए एक सार्वभौमिक आह्वान हैं। सन 2015 में संयुक्त राष्ट्र के 70 वें सत्र के पश्चात सहस्राब्दी विकास लक्ष्यों के निरस्तहो जाने पर उनका स्थान वैश्विक सतत विकास लक्ष्यों ने ले लिया । 25 सितंबर 2015 के संयुक्त राष्ट्र महासभा संकल्प A/RES/70/1 के अनुच्छेद 54 में लक्ष्य और उद्देश्य शामिल हैं। यह संकल्प एक व्यापक अंतर सरकारी समझौता है जो 2015 के बाद के विकास एजेंडे के रूप में कार्य करता है। सतत विकास लक्ष्यों का संकल्प A/RES/66/288 में सहमत सिद्धांतों पर आधारित है, जिसका शीर्षक

"भविष्य जो हम चाहते हैं" है। सतत विकास लक्ष्यों का उद्देस्य अगले 15 सालों (2016-2030) में गरीबी और भुखमरी को समाप्त करना और लैंगिक समानता को सुनिश्चित करना है। इसके अतिरिक्त सतत विकास लक्ष्यों में स्वास्थ्य, जलवायु परिवर्तन, शिक्षा, जल, ऊर्जा, स्वच्छता, शहरीकरण, पर्यावरण और सामाजिक न्याय सहित सामाजिक और आर्थिक विकास के मुद्दों को शामिल किया गया है।193 सदस्यीय महासभा ने इस नयी रूपरेखा 'अपनी दुनिया में बदलाव: सतत विकास के लिए 2030 की कार्य योजना' को अंगीकारकिया।इसमेंअगले 15 साल में जलवायु परिवर्तन से निपटने के लिए 17 'लक्ष्य' और 169 'सहायक लक्ष्यों' को निर्धारित करते हुए P5 [(जन (People), ग्रह (Planet), शांति (Peace), समृद्धि (Prosperity) तथा साझेदारी (Partnership)] पर विशेष बल दिया गया है।

2.10.1 संयुक्त राष्ट्र का कार्य सूची 2030 (17 विकास लक्ष्य)

1. गरीबी के सभी रूपों की पूरे विश्व से समाप्ति

पूरे विश्व में लगभग 836 मिलियन लोग अभी भी गरीबी में जीवन व्यतीत कर रहे हैं। विकासशील देशों में 5 में से 1 व्यक्ति प्रतिदिन 1.25 डॉलर से भी कम आय में अपना जीवन व्यतीत करता है।अतः इस लक्ष्य का उद्देश्य वर्ष 2030 तक गरीबी के सभी स्तरों में 50 प्रतिशत तक कमी लाना है, इसमें सबसे अधिक कमजोर, बुनियादी संसाधनों और सेवाओं तक पहुंच बढ़ाने, और संघर्ष और जलवायु से संबंधित आपदाओं से प्रभावित समुदायोंका समर्थन करना शामिलहै।

2. भूख की समाप्ति, खाद्य सुरक्षाऔरबेहतर पोषण तथा सतत कृषि को बढ़ावा देना

इस लक्ष्य का उद्देश्य वर्ष 2030 तक भूख और कुपोषण के सभी रूपों को खत्म करना है तथा सभीलोग – खास कर बच्चों के पास वर्ष भर पर्याप्त और पौष्टिक भोजन की उपलब्धि सुनिश्चित करना है। इसमें स्थायी कृषि पद्धतियों को बढ़ावादेना, कृषि उत्पादक ता एवं लघु स्तर पर खाद्य उत्पाद कों की आय को दोगुना करना, महिलाओं, किसानों,

मछुआरों आदि के आय को बढ़ाना तथा वर्ष 2030 तक सतत खाद्य उत्पादन प्रणाली को सुनिश्चित करना और लचीली कृषि पद्धतियों को लागू करना है ताकि उत्पादकता और उत्पादन में वृद्धि हो शामिल है।

3. सभी आयु के लोगों में स्वास्थ्य सुरक्षा और स्वस्थ जीवन को बढ़ावा देना

इस लक्ष्य का उद्देश्य वर्ष 2030 तक वैश्विक मातृत्व मृत्यु दर को प्रति 100,000 जीवित जन्म पर 70 से कम करना, साथ ही नवजात तथा 5 वर्ष से कम उम्र के ऐसे बच्चों की मृत्यु रोकना जिन्हें बचाया जाना संभव है ताकि नवजात बच्चों की मृत्यु दर प्रति 1000 जीवित जन्म पर 12 तकतथा 5 वर्ष तक के बच्चों में यह दर 25 प्रति हजार तक करने के लक्ष्य को प्राप्त किया जा सके तथा 2030 तक एड्स, तपेदिक, मलेरिया और अन्य फैलने वाले रोगों की महामारी समाप्त करना, सार्वभौमिक स्वास्थ्य बीमा हासिल करना, सुरक्षित और सस्ती दवाओं और टीकों की पहुंच प्रदान करना और टीके के लिए सहायक अनुसंधान और विकास को प्रोत्साहन देना है।

4. समावेशीऔर न्याय संगत गुणवत्तायुक्त शिक्षा सुनिश्चित करने के साथ ही सभी को सीखने का अवसर देना

यह लक्ष्य यह सुनिश्चित करता है कि वर्ष 2030 तक सभी लड़कों एवं लड़कियों को ।यह लक्ष्य सुनिश्चित करता है किस भी लड़कियों और लड़कों को 2030 तक निःशुल्क, समान गुणवत्ता पर प्राथमिक, माध्यमिक शिक्षा सुनिश्चित हो सके तथा यह भी सुनिश्चित करना कि उचित व्यावसायिक प्रशिक्षण के लिए समान अवसर प्राप्त हों, लिंग और धन की असमानता को समाप्त करना और गुणवत्ता उच्च शिक्षा तक सार्वभौमिक पहुंच प्राप्त करना।

5. लैंगिक समानता प्राप्त करने के साथ ही सभी महिलाओं एवं लड़कियों का सशक्तीकरण

इस लक्ष्य का उद्देश्य है कि वर्ष 2030 तक महिलाओं के खिलाफ भेदभाव, यौन हिंसा तथा तस्करी की समाप्ति हो तथा बालविवाह, भ्रूणहत्या, शोषण, अवैतनिक देखभाल, घरेलू कार्य का असमान विभाजन और सार्वजनिक कार्यालय में भेदभाव सहित सभी बड़ी बाधाओं की पूर्ण समाप्ति। साथ ही भूमि और संपत्ति जैसे आर्थिक संसाधनों पर महिलाओं को समान अधिकार प्रदान करना एवं यौन और प्रजनन स्वास्थ्य के लिए सार्वभौमिक पहुंच सुनिश्चित करना है।

6. सभी के लिए स्वच्छता एवं जल के सतत प्रबंधन की उपलब्धता सुनिश्चित करना

2050 तक, यह अनुमान लगाया गया है कि पानी की कमी की आवर्तीता से चार लोगों में कम से कम एक व्यक्ति प्रभावित होगा। इस लक्ष्य का मुख्य उद्देस्य 2030 तक सभी के लिए सुरक्षित और सस्ती पीने के पानी की सार्वभौमिक पहुंच सुनिश्चित करने के लिए पर्याप्त बुनियादी ढांचे में निवेश, स्वच्छता सुविधाएं प्रदान करना और हर स्तर पर स्वच्छता को प्रोत्साहित करना, जंगल, पहाड़ों, झीलों और नदियों जैसे पानी से संबंधित पारिस्थितिक तंत्रों की रक्षा और पुन स्र्थापना, विकासशील देशों में जल दक्षता और सहायता उपचार तकनीकों को प्रोत्साहित करने के लिए और

अंतर्राष्ट्रीय सहयोग। वर्ष 2030 तक, खुलेमेंशौचकीप्रवृत्तिकीसमाप्तितथासुरक्षितववहनीयपेयजलकीपहुंच सुनिश्चित करना है।

7. सस्ती, विश्वसनीय, सतत औरआधुनिक ऊर्जा तक पहुंच सुनिश्चित करना

2030 तक सस्ती बिजली तक सार्वभौमिक पहुंच सुनिश्चित करने के लिए सौर ऊर्जा, पवन और थर्मल जैसे स्वच्छ ऊर्जा स्रोतों में निवेश करना । वर्ष 2030 तक, सभी के लिए सस्ती, विश्वसनीय, सतत और आधुनिक ऊर्जा उपलब्ध कराना और ऊर्जा दक्षता में सुधार की वैश्विक दर को दोगुना कर ना इस लक्ष्य का मुख्य उद्देस्य है। सभी विकास शील देशों में स्वच्छ ऊर्जा मुहैया कराने के लिए बुनियादी ढांचा और उन्नयन प्रौद्योगिकी का विस्तार करना एक महत्व पूर्ण लक्ष्य है जो विकास को प्रोत्साहित कर सकता है और पर्यावरण को मदद कर सकता है।

8. सभी के लिए निरंतर सतत, समावेशी, सततआर्थिकविकास, पूर्ण और उत्पादक रोजगार तथा मर्यादित कार्य को बढ़ावा देना

इस लक्ष्य का मुख्य उद्देश्य है वर्ष 2030 अल्प विकसित देशों में कम से कम 7 प्रतिशत वार्षिक वृद्धि दर प्राप्त करना साथ ही वर्ष 2020 तक युवा रोजगार के लिए वैश्विकरणनीति का विकास एवं वर्ष 2025 तक बालश्रम के सभी रूपों की समाप्ति। इन लक्ष्यों को ध्यान में रखते हुए, लक्ष्य 2030 तक सभी महिलाओं और पुरुषों के लिए पूर्ण और उत्पादक रोजगार और रोजगार हासिल करनाहै।

9. लचीले बुनियादी ढांचे, समावेशीऔरसततऔद्योगिकरण तथा नवाचार को बढ़ावा देना

बुनियादी ढांचे और नवीनता में निवेश आर्थिक विकास और विकास के महत्वपूर्ण संचालक हैं। आधे से अधिक आबादी अब शहरों में रह रही है, बड़े पैमाने पर परिवहन और नवीकरणीय ऊर्जा कभी अधिक महत्वपूर्ण हो रही है, जैसे कि नए उद्योगों और सूचना और संचार प्रौद्योगिकियों के विकास। इस लक्ष्य का उद्देश्य आर्थिक और पर्यावरणीय चुनौतियों, जैसे नई नौकरी उपलब्ध कराने और ऊर्जा दक्षता को बढ़ावा देना, सतत उद्योगों को बढ़ावा देना, वैज्ञानिक अनुसंधान और नवाचार में निवेश करना तथा सतत विकास हेतु विकासशील देशो में इंटर नेट तक पहुंच के लिए डिजिटल क्रांति को बढ़ावा देना है।

10. देशोंकेबीचऔरभीतरअसमानताकोकमकरना

आय असमानता की बढ़ती वैश्विक समस्या को दूर करना। व्यापक असमानताओं को आय अर्जियों के निचले प्रतिशत को सशक्त करने के लिए अच्छी नीतियों को अपनाना, और सेक्स, जाति या जातीयता के बावजूद सभी के आर्थिक समावेश को बढ़ावा देना।आय असमानता की वैश्विक समस्या है जिसके लिए वैश्विक समाधान की आवश्यकता होती है।इस लक्ष्य के मुख्य उद्देस्य हैं वित्तीय बाजारों और संस्थानों के विनियमन और निगरानी में सुधार करना, विकास की जरूरत को प्रोत्साहित करना और उनक्षेत्रों में प्रत्यक्ष विदेशी निवेश करना जहां आवश्यकता सबसे ज्यादा है। इसके

साथ ही पूरे विश्व में लोगों के सुरक्षित प्रवास और गतिशीलता को सुविधा जन क बनाकर आपसी मत भेदों को कम करना है भी इसका उद्देस्य है।

11. शहरों एवं मानव बस्तियों को समावेशी, सुरक्षित एवं सहनशीलत थासततबनाना

दुनिया की आधे से अधिक आबादी अब शहरी क्षेत्रों में रहती है। 2050 तक, यह आंकड़ा 6.5 अरब लोगों तक पहुंच जाएगा यानी सारी मानवता का दो-तिहाई हिस्सा । विकासशील देशों में शहरों की तेजी से वृद्धि, ग्रामीणों से शहरी स्थानांतरण के साथ बढ़ते हुए, मेगा शहरों में तेजी आई है। 1990 में, दस मेगा शहरों में 10 लाख निवासियों या उससे अधिक थे वहीं, 2014 में, मेगा-शहरों की संख्या बढ़कर 28 हो गयी है वही इन शहरों में रहने वालो की संख्या कुल 4.53 अरब हो गयी है। चरम गरीबी अक्सर शहरी स्थान पर केंद्रित होती है, और इन क्षेत्रों में बढ़ती आबादी को समायोजित करने के लिए राष्ट्रीय और स्थानीय सर कारें संघर्ष करती हैं। शहरों को सुरक्षित और सतत बनाने के लिए सुरक्षित और किफायती आवास तक पहुंच सुनिश्चित करना और झुग्गी बस्तियों को अपग्रेड करना सुनिश्चित करना।इसमें भागीदारी और समावेश द्वारा सार्वजनिक परिवहन में निवेश, हरित सार्वजनिक स्थानों का विकास और शहरी नियोजन और प्रबंधन को बेहतर बनाना शामिल है ।

12. स्थायी एवं उत्तरदायी उपभोगऔर उत्पादन प्रणाली को सुनिश्चित करना

साझा प्राकृतिक संसाधनों और विषाक्त अपशिष्ट और प्रदूषण का कुशल प्रबंधन,अपशिष्टों को कम करने तथा उनका दो बारा इस्तेमाल करने के लिए उद्योगों, व्यवसायों और उपभोक्ताओं को प्रोत्साहित करना, अधिक कुशल उत्पादन और आपूर्ति श्रृंखला बनाने के लिए प्रति व्यक्ति खुद रा और उपभोक्ता स्तरों पर वैश्विक खाद्य कचरे को हल्का करना एवं खाद्य सुरक्षा सुनिश्चित करना इस लक्ष्य को हासिल करने के लिए महत्वपूर्ण लक्ष्य हैं।

13. जल वायु परिवर्तन और उस के प्रभावों से निपटने के लिए तत्काल कार्रवाई करना

यह लक्ष्य भूकंप, सूनामी, उष्ण कटिबंधीय चक्रवातों और सैकड़ों अरब डॉलर में बाढ़ की वार्षिक औसत हानि, अकेले आपदा जोखिम प्रबंधन में निवेश करने की आवश्यक पर जोर देता है तथा यह विकासशील देशों की जरूरतोंकोपूराकरनेकेलिए 2020 तक सालाना 100 अरब डॉलर जुटाना सुनिश्चित करता है और जलवायु से संबंधितआपदाओं को कम करने में मदद करने पर जोर देता है। इसके साथ ही यह लक्ष्य अधिक कमजोर क्षेत्रों में मदद करना, जैसे चारो ओर से भूमि से घिरे देशों और द्वीप देशो की राष्ट्रीयरण नीतियों को जलवायु परिवर्तन के अनुकूल बनाने, वैश्विक औसत तापमान में वृद्धि पूर्व औद्योगिक स्तरों से ऊपर 2 डिग्री सेल्सिय सतक सीमित करने हेतु तत्काल सामूहिक कार्रवाई की आवश्यकता पर भी बल देताहै।

14. महासागर, समुद्र तथा सागरीय संसाधनों का संरक्षण और सतत उपयोग करना

यह लक्ष्य विश्व के महासागरों की महत्वता एवं उन पर जलवायु परिवर्तन के फलस्वरूप बढ़ते तापमान, रसायन विज्ञान, धाराओं और पानी के जीवन-चालित वैश्विक प्रणालियां के कुशल प्रबंधन हेतु समर्पित है। इस सतत विकास लक्ष्य का

उद्देश्य प्रदूषण से समुद्री और तटीय पारिस्थिति की प्रणालियों को स्थायी रूप से प्रबंधित और संरक्षितकरना है, साथ ही महासागरीय अम्लीकरण के प्रभावों को संबोधित करना, संरक्षणकोबढ़ाना, सभी प्रकार के समुद्री प्रदूषण को कम करना और अंतर्राष्ट्रीय कानून के माध्यम से महासागर आधारित संसाधनों का सतत उपयोग करना है।

15. सतत उपयोग को बढ़ावा देने वाले स्थलीय पारिस्थिति कीय प्रणालियों, सुरक्षितजंगलों, भूमिक्षरण और जैव विविधता के बढ़ते नुकसान को रोकने का प्रया सकरना

इस लक्ष्य का उद्देश्य सतत उपयोग को बढ़ावा देने वाले स्थलीय पारिस्थितिकीय प्रणालियों, सुरक्षित जंगलों, भूमिक्षरण और जैव विविधता के बढ़ते नुकसान को रोकने के प्रयासों को बढ़ावा देना, भूमि अवक्रमण और कृषि योग्य भूमिका में आर ही गिरावट को दूर करना, वनों के कटान, सूखे और मरुस्थलीकरण को रोकना तथा 2020 तकवनों, झीलों, सूखे इलाकों और पहाड़ों जैसे स्थलीय पारिस्थितिकी प्रणालियों के उपयोग को संरक्षित और पुनर्स्थापित करना है।

16. सतत विकास के लिए शांतिपूर्ण और समावेशी समितियों को बढ़ावा देने के साथ ही सभी स्तरों पर इन्हें प्रभावी, जवाब देही बनना ताकि सभी के लिए न्याय सुनिश्चित हो सके

यह लक्ष्य स्थायी विकास के लिए शांतिपूर्ण और समावेशी समाजों को बढ़ावा देने, सभीकेलिएन्यायकीउपलब्धताका प्रावधान, और सभी स्तरों पर प्रभावी, जवाब देह संस्थानों का निर्माण करने के लिए समर्पित है।इस लक्ष्य का उद्देश्य सभी प्रकारके हिंसा को कम करना है, और संघर्ष और असुरक्षा के स्थायी समाधान खोजने के लिए सरकारों और समुदायों केसाथ काम करना है। इसके साथ ही कानून के शासन को सुदृढ़ बनाना और मानव अधिकारों को बढ़ावा देना, अवैध हथियारों के प्रवाह को कम करना और वैश्विक शासन के संस्थानों में विकासशील देशों की भागीदारी को मजबूत करना है।

17. सतत विकास के लिए वैश्विक भागीदारी को पुन र्जीवित करने के अतिरिक्त कार्यान्वयन के साधनों को मजबूत बनाना

विश्व भर में बहुत से ऐसे देश हैं जिन्होंने अभी आर्थिक विकास का उच्चत मस्तर प्राप्तन हीं कियाहै (विकासशील देश), जबकि कुछ देशों ने यह लक्ष्य प्राप्त कर लिया है (विकसितदेश)। विश्वस्तर पर, यह असमानता प्रायःउस आर्थिक विभाजन का सूचक है जो 'दक्षिण' के विकासशील देशों तथा 'उत्तर' के औद्योगिक या विकसितदेशों केबीचहै।विकासशील देशों का विकसित देशों पर हमेशा से यह आरोप रहा है कि वो अंतर्राष्ट्रीय संस्थाओं पर दबाव बनाकरअपने हितकारी नियमों का निर्माण कर वाती हैं जो दक्षिण के विकासशील देशो के लिए आर्थिक रूप से हित कारी नहीं होते। उदारीकरण एवं भूमंडलीकरण के इस युग में उत्तर (विकसित) एवं दक्षिण (विकासशील) देशों के बीच की इस खाई को पाटना एक प्रमुख चुनौती बनकर उभरी है।सतत विकास विकास के लक्ष्यों को प्राप्त क रने हेतु इन देशों

के मध्य उपजे विवादों का निपटारा सुनिश्चित करना आवश्यक है तथा उत्तर-दक्षिण एवं दक्षिण-दक्षिण सहयोग भी आवश्यक होगा।

यह लक्ष्य अन्य सभी लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए राष्ट्रीय योजनाओं का समर्थन कर के, उत्तर-दक्षिणऔरदक्षिण-दक्षिण सहयोगको बढ़ाने का लक्ष्यहै। अंतर्राष्ट्रीय व्यापार को बढ़ावा देना, और विकासशील देशों को अपने निर्यात में वृद्धि करने में मदद करना, एक सार्वभौमिक नियम-आधारितऔरन्याय संगतखुली व्यापार प्रणाली को प्राप्त करना ताकि सबको लाभ पहुँचाने वाली प्रणाली विकसित करना इस लक्ष्यका मुख्य उद्देस्य है।

2.8 सतत विकास के मुख्य सिद्धांत

सतत विकास परिवर्तन की एक प्रक्रिया है जिसमें समान रूप से संसाधनों का शोषण, निवेश की दिशा, तकनीकी विकास और संस्थागत परिवर्तन का अभिविन्यास सुनिश्चित करना है और मानव की दोनों वर्तमान और भविष्य की जरूरतों और आकांक्षाओं को पूरा करने की क्षमता को बढ़ाना है। सततशीलता एक आदर्श और गुणात्मक अवधारणा है, जो विकासशील लक्ष्यों में सांस्कृतिक, सामाजिक, पारिस्थितिक और आर्थिक आयामों को एकीकृत करती है ताकि बेहतर आजीविका की पूर्ति के लिए सद्भावया संतुलन प्राप्त किया जा सके । मौलिक रूप से यह एक स्थानीय प्रयास है क्योंकि प्रत्येक समुदाय की विभिन्न सामाजिक, आर्थिक और पर्यावरणीय आवश्यकताएं और चिंताओं हैं। इस के कुछ महत्वपूर्ण सिद्धांत हैं जो सामाजिक, आर्थिक और पर्यावरणीय व्यवस्थाओं के सही एकीकरण की सुविधा प्रदान कर सकते हैं ।

सततशीलता गतिशील मानव आर्थिक प्रणालियों और धीमी पारिस्थिति की प्रणालियों के बीच एक संबंध है, जिसमें: (i) मानव जीवन विकसित हो सकता है (ii) मानव का विकास हो सकता है (iii) संस्कृति विकसित कर सकती है और (iv) मानव गतिविधियों के प्रभाव को सीमित किया जा सकता है ताकि जीवन-समर्थन प्रणाली की विविधता, जटिलता और कामकाज को प्रभावित नहो। पारिस्थिति की प्रणालियों की क्षमता के भीतर मानव जीवन की गुणवत्ता में सुधार के लिएजैविकप्रणालीलक्ष्यों (आनुवंशिकविविधता, प्रतिरोध, जैविकउत्पादकता) के साथ-साथ आर्थिक प्रणाली के लक्ष्यों (मूलभूत आवश्यकताओं की संतुष्टि, न्याय परस्ता में वृद्धि, उपयोगी वस्तुओं और सेवाओं में बढ़ोतरी) और सामाजिक प्रणाली लक्ष्यों (सांस्कृतिक विविधता, संस्थागत सततशीलता, सामाजिक न्याय, भागीदारी) को बढ़ावा देना आवश्यक है। सतत विकास केमुख्य सिद्धांत इस प्रकारहैं: -

1. पारिस्थिति की तंत्र के संरक्षण का सिद्धांत

पारितंत्र या पारिस्थितिक तंत्र एक प्राकृतिक इकाई है जिसमें एक क्षेत्र विशेष के सभी जीवधारी, अर्थात् पौधे, जानवर और अणुजीव शामिल हैं जो कि अपने निर्जीव पर्यावरण के साथ अंतर्क्रिया करके एक सम्पूर्ण जैविक इकाई बनाते हैं। पारिस्थितिक तंत्र संरक्षण का मुख्य कार्य प्रणाली के भीतर संरचना, कार्य और प्रजातियों के संकलन की रक्षा या पुनर्स्थापना करना है। सतत विकास का अंतिम उद्देश्य धरती को संरक्षण देना है । यह पारिस्थितिक तंत्र को सततशील

बनाने के लिए है।इस प्रयोजन के लिए स्थलीय और जलीय पारिस्थितिकी तंत्र का संरक्षण आवश्यक है। सतत विकास को प्राप्त करने के लिए, पर्यावरण संरक्षण को विकास प्रक्रिया का एक अभिन्न हिस्सा बनाना चाहिए; राष्ट्रों को अपने संसाधनों का फायदा उठाने का सार्वभौम अधिकार है, लेकिन उनके सीमाओं से परे पर्यावरणीय क्षति पहुचाये बिना ।आज के विकास को वर्तमान और भावी पीढ़ियों के विकास और पर्यावरण कीजरूरतों कोकमजोर नहीं करना चाहिए। मानव गतिविधियों को पारिस्थितिक तंत्र की समर्थन क्षमता का सम्मान करना चाहिए। धरती की क्षमता बढ़ाने में शामिल विकास कार्य पृथ्वी की वहन क्षमता के भीतर होना चाहिए। पृथ्वी के सीमित संसाधन हैं पृथ्वी पर सीमित साधन और संसाधन असीमित साधनों के लिए पर्याप्त नहीं हो सकते हैं संसाधनों का अधिक से अधिक शोषण पर्यावरण पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है। लोग उन सारी चीजों को नहीं प्राप्त कर सकते हैं जिन्हें उन्हें पृथ्वी से तुरंत आवश्यकता है।

2. समाज के सतत विकास का सिद्धांत

समाज पर्यावरण संरक्षण के प्रति प्रेरित हो इसके लिए समाज का स्थिर होना आवश्यक है और समाज की सततशीलता स्वस्थ निवास, संतुलित आहार, पर्याप्त स्वास्थ्य सेवा, रोजगार और श्रेष्ठ शिक्षा की उपलब्धता पर निर्भर करती है।यदि ये तत्व विकसित होते हैं और समाज में लोगों के लिए उपलब्ध होते हैं, तो यह एक सतत समाज बन जाता है।यह प्रकृति और प्राणियों के प्रति अपने सकारात्मक दृष्टिकोण को विकसित करने में सहायताकरता है ।मानव स्वास्थ्य और जीवन की बेहतर गुणवत्ता सतत विकास की चिंताओं के केंद्र में हैं ।प्रकृति के साथ सामंजस्य में लोग स्वस्थ और गुणवत्ता के साथ जीवनके हकदार हैं।पूरे विश्व से गरीबी उन्मूलन, जीवन स्तर में असमानताओं को कम करने और अधिकांश लोगों की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए सतत विकास आवश्यक है।

3. जैव विविधता संरक्षण का सिद्धांत

जैव-विविधता (जैविक-विविधता) जीवों के बीच पायी जाने वाली विभिन्नता है जोकि प्रजातियों में, प्रजातियों के बीच और उनकी पारितंत्रों की विविधता को भी समाहित करती है। सतत विकास जैव विविधता सरंक्षण पर केंद्रित है तथा इसका संरक्षण जरूरी है। जैव विविधता से मिलने वाली सेवाओं और जैविक संसाधनों के लाभ को निरंतर प्राप्त करने के लिए जैव विविधता का संरक्षण करना चाहिए, जो कि पृथ्वी पर हमारे जीवन को जीने के लिए आवश्यक हैं ।यह दुनिया के सभी जीवित प्राणियों को संरक्षित करने के लिए भी आवश्यकहै। जैव विविधता के संरक्षण के लिए राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय कार्यक्रम आयोजित कि एजाने चाहिए तथा कार्यक्रमों में समन्वय होना चाहिए। जैविक विविधता अतुलनीय लाभ प्रदान करती है और वर्तमान और भावी पीढ़ियों के लाभ के लिए संरक्षित होना चाहिए ।अगर मानव जीवन की गुणवत्ता को बनाए रखना है तो प्रजातियों की सुरक्षा, पारिस्थितिक तंत्र और जीवन को बनाए रखने वाली प्राकृतिक प्रक्रियाएं आवश्यक हैं।

4. जनसंख्या नियंत्रण का सिद्धांत

लोग पृथ्वी पर पाए गए सीमित साधनों औ रसंसाधनों का उपयोग करके अपने जीवन को बनाए रखते हैं। जनसंख्या वृद्धि के कारण, भोजन, कपड़े, आवास आदि की जरूरतें बढ़ जाती हैं, दुनिया में उपलब्ध साधनों और संसाधनों को बढ़ती आबादी की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए बढ़ाया नहीं जा सकती । इसलिए, स्थायी विकास के लिए जनसंख्या नियंत्रणऔरप्रबंधन आवश्यक हैं। यह पर्यावरण संतुलन में सहायक होगा।

5. मानव संसाधन संरक्षण का सिद्धांत

पर्यावरण की रक्षा करना और सतत विकास को प्राप्त करना न केवल तकनीकी और आर्थिक मामलों पर निर्भर करता है, बल्कि विचारों, दृष्टिकोणों और व्यक्तिगत व्यवहार में बदलावों पर भीनिर्भर करता है। व्यक्तियों और समुदायों की प्रत्यक्ष भागीदारी आवश्यक है। सभी को अपने पर्यावरण के बारे में पूरी तरह से अवगत होना चाहिए, इसकी मांगों और सीमाओं को जानना चाहिए और तदनुसार अपनी आदतों और व्यवहार को बदलना चाहिए। पृथ्वी की देखभाल करने के लिए मनुष्य के ज्ञान और कौशल को विकसित करना चाहिए। शिक्षा, स्वास्थ्य देखभाल और प्रशिक्षण प्रदान कर के मानव संसाधन विकसित किया जाना है । मानव संसाधन स्थायी विकास के सिद्धांतोंको अपनाने के लिए योगदान देता है।

6. सार्वजनिक भागीदारी का सिद्धांत:

सतत विकास को व्यक्तिगत तौर पर नहीं रखा जा सकता है। प्रत्येक व्यक्ति का एक संयुक्त प्रयास अनिवार्य है।सतत विकास की अवधारणा को क्रियान्वित करने के लिए सार्वजनिक भागीदारी को बढ़ाया जाना चाहिए । इसलिए, स्थायी विकास के हर कार्य क्रम में जनता के सकारात्मक व्यवहार को विकसित किया जाना चाहिए ।अधिकार और जिम्मेदारियों को अधिकार के उचित स्तर तक सौंप दिया जाना चाहिए । केंद्रों को निर्णय लेने की क्षमता पर्याप्त रूप से संबंधित नागरिकों और समुदायों को जितना संभव हो सके सौंप देना चाहिए ।

सामाजिक/आर्थिक जीवन और पर्यावरण को प्रभावित करने वाली जानकारी तक पर्याप्त पहुंच सभी को प्रदान की जानी चाहिए। सतत विकास की स्पष्ट नीतियाँ होनी चाहिए और इसके सामाजिक/आर्थिक और पर्यावरणीय प्रभावों के बारे में लोगों का ज्ञान, सतत समाधान और दृष्टिकोण को बढ़ावा दिया जाना चाहिए। निर्णय लेने में सार्वजनिक भागीदारी को मजबूत किया जाना चाहिए।

7. सांस्कृतिक विरासत संरक्षण का सिद्धांत

संपत्ति, स्थल, परिदृश्य, परंपराओं और ज्ञान से बना सांस्कृतिक विरासत, एक समाज की पहचान को दर्शाती है। यह पीढ़ी से पीढ़ी तक समाज के मूल्यों से गुजरता है, और इस विरासत के संरक्षण से विकास की सततशीलता को बढ़ावा मिलता है। सतत विकास सामाजिक परंपराओं, धार्मिक स्थानों और लोगों के सांस्कृतिक पहलुओं के संरक्षण पर बल देता है।विविध सांस्कृतिक विरासत समाज का अमूल्य योगदान है, लेकिन अंधविश्वास से बचा जाना चाहिए।

सांस्कृतिक विरासत को संरक्षित करना हमारा कर्तव्य है इसका संरक्षण सतत विकास का बढ़ावा देता है। सांस्कृतिक विरासत घटकों को पहचाना, संरक्षित और बढ़ाया जाना चाहिए, उनकी आंतरिक दुर्लभता और नाजुकता को ध्यान में रखना चाहिए।

(8) सामाजिक न्याय और एकजुटता: सामाजिक न्याय (social justice)की बुनियाद सभी मनुष्यों को समान मानने के आग्रह पर आधारित है। किसी के साथ सामाजिक**,** धार्मिक और सांस्कृतिक पूर्वग्रहों के आधार पर भेदभाव नहीं होना चाहिए।विकासअंतर-पीढ़ीगतन्यायपरस्ता, सामाजिकनैतिकताऔरएकताकीभावनामेंकियाजानाचाहिए।

(9) आर्थिक दक्षता:अर्थव्यवस्था और उसके क्षेत्र प्रभावी होने चाहिए, जो कि नवाचार और आर्थिक समृद्धि की ओर अग्रसर हो एवं सामाजिक प्रगति और पर्यावरण के प्रति अनुकूल हो। राष्ट्रों को एक खुले अंतरराष्ट्रीय आर्थिक प्रणाली को बढ़ावा देने के लिए सहयोग करना चाहिए जिससे आर्थिक विकास और सभी देशों में सतत विकास हो। अंतर्राष्ट्रीय नीतियों को सीमित करने के एक अनुचित साधन के रूप में पर्यावरणीय नीतियों का उपयोग नहीं किया जाना चाहिए।

(10) भागीदारी और प्रतिबद्धता:नागरिकों और नागरिकों के समूहों की भागीदारी और प्रतिबद्धता को विकास की एक ठोस दृष्टि को परिभाषित करने और इसके पर्यावरण, सामाजिक और आर्थिक सततशीलता सुनिश्चित करने के लिए आवश्यक हैं। पर्यावरणीय मुद्दों को नियंत्रित करने का सबसे अच्छा तरीका संबंधित नागरिकों की भागीदारी है। व्यापक रूप से पर्यावरण संबंधी जानकारी उपलब्ध कराने के द्वारा राष्ट्र जागरूकता और सहभागिता को प्रोत्साहित कर सकता है।

(11)ज्ञानतकपहुंच: शिक्षा के लिए अनुकूल उपाय, सूचना और अनुसंधान तक पहुंच को प्रोत्साहन देने के लिए प्रोत्साहित किया जाना चाहिए ताकि नवीनता को प्रोत्साहित किया जा सके, जागरूकता पैदा की जा सके और स्थायी विकास के कार्यान्वयन में लोगों की प्रभावी भागीदारी सुनिश्चित हो सके। सततविकास के लिए समस्याओं कीबेहतर वैज्ञानिक समझ की आवश्यकता है। सततशीलता के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए राष्ट्रों को ज्ञान और नवीन तकनीकों को साझा करना चाहिए। देशों को पर्यावरणीय मामलों और सतत विकास पर अपनी आबादी को बेहतर शिक्षित, सूचित और संवेदनशील बनाने के लिए रणनीतियों को विकसित करना होगा।

(12)अंतर-सरकारी साझेदारी और सहयोग:सरकार को यह सुनिश्चित करने के लिए सहयोग करना चाहिए कि विकास पर्यावरणीय, सामाजिक और आर्थिक दृष्टिकोण से स्थायी है। किसी दिए गए क्षेत्र में कार्यों के बाहरी प्रभाव को ध्यान में रखना चाहिए। विश्व के सभी राष्ट्रों को प्राकृतिक आपदाओं या गतिविधियों के बारे में चेतावनी साझा करनी चाहिए।

(13)जिम्मेदार उत्पादन और खपत:उत्पादन और खपत के स्वरूप को विशेष रूप से संसाधनों के उपयोगको अपशिष्ट और अनुकूलन करने वालेए क पारि स्थिति क दृष्टिकोण के माध्यम से उत्पादन और खपत को अधिक

व्यवहार्य और अधिक सामाजिक और पर्यावरण के लिए जिम्मेदार बनाने के लिए बदलना चाहिए और उचित जनसांख्यि की नीतियों को बढ़ावा देना चाहिए। निजी और सार्वजनिक क्षेत्र के बीच सहयोग के साथ व्यापार की सामाजिक जिम्मेदारी को मजबूत किया जाना चाहिए।

(14) प्रदूषक भुगतान करें:ऐसे उपक्रम या संस्थाएं जो प्रदूषण फैलते हैं या पर्यावण को किसी अन्य तरह से नुकसान पहुंचाते हैं उन्हें पर्यावरणीय क्षति को रोकने, कम करने और नियंत्रण के उपायों की लागत का अपना हिस्सा उठाना चाहिए। राष्ट्रों द्वारा अपने नियंत्रण के तहत गतिविधियों के कारण अपनी सीमाओं से परे क्षेत्रों में हुए नुकसान के लिए मुआवजे प्रदान करने हेतु अंतरराष्ट्रीय कानून का विकास होना चाहिए। पूरे विश्व में राष्ट्र स्तर पर प्रभावी पर्यावरणीय कानूनों के निर्माण और प्रदूषण के शिकार लोगों और अन्य पर्यावरणीय क्षतियों के लिए देयता के संबंध में राष्ट्रीय कानून विकसित होने चाहिए। सभी राष्ट्रों को प्रस्तावित गतिविधियों के पर्यावरणीय संभावित प्रतिकूल प्रभावों का आकलन करना चाहिए।

प्रदूषण को प्रदूषण की लागत को सहन करना सिद्धांत रूप में होना चाहिए।कीमतें उपभोग और उत्पादन में शामिल गतिविधियों के साथ-साथ प्राकृतिक संसाधनों के उपयोग की लागत सहित उनके प्रभावों के लिए समाज द्वारा भुगतान की जाने वाली वास्तविक लागत को प्रतिबिंबित करनी चाहिए। पर्यावरण में हानिकारक / प्रदूषण की गतिविधियों में लगे लोगों को मानव स्वास्थ्य या पर्यावरण के कारण होने वाले नुकसान के लिए भुगतान करना होगा।

(15) लैंगिक समानता:लैंगिक समानता न केवल दुनिया की आधी बादी हेतु चिंता है परन्तु यह मानव अधिकारों से भी जुड़ा है। जब किसी समाज की आबादी का आधा हिस्सा आर्थिक, राजनीतिक या सामाजिक रूप से हाशिए पर होता है तो समाज विकसित नहीं हो सकता है। स्थायी विकास प्राप्त करने के लिए महिलाओं की पूर्ण भागीदारी आवश्यकहै। राष्ट्रों कोपहचान, संस्कृति और स्वदेशी लोगों के हितों को पहचानना और समर्थन करना चाहिए।

(16) पारम्परिक ज्ञान प्रणाली का सम्मान एवं उपयोग:पारंपरिक ज्ञान विकास का एक सक्षम घटक है। मानव कल्याण और सतत विकास हेतु पारम्परिक ज्ञान एक प्रमुख भूमिका निभा सकता है तथा आज विश्व को लोगों के पारम्परिक ज्ञान की भी जरूरत है।पारम्परिक ज्ञान प्रणाली वैश्विक चुनौतियों जैसे जलवायु परिवर्तन, सामाजिक एवं लैंगिक असमानता आदि में सुधार हेतु योगदान दे सकते हैं। सभी राष्ट्रों को अपने अपने अधिकार क्षेत्रों में पारम्परिक ज्ञान का अभिलेखीकरण कराना चाहिए ताकि इस ज्ञान का सार्वभौमिक उपयोग रचनात्मक कार्यों हेतु किया जा सके तथा भविष्य के लिए भी संरक्षित किया जा सके।

(17) सावधानी, रोकथाम और मूल्यांकन का सिद्धांत: सावधानी पूर्वक दृष्टिकोण का अर्थ है कि जहां भी गंभीर या अपरिवर्तनीय क्षति की संभावना महसूस की जाती है, वहां बिना विलम्ब के उस क्षति की रोकथाम के उपायों को अपनाना चाहिए तथा निरंतर मूल्यांकन की पढ़ती का सहारा लेना चाहिए ताकि पर्यावरण, पारिस्थिकी तंत्रों एवं मानव स्वास्थ्य को कोई हानि न हो; यानी कथित खतरे की प्रबलता को ध्यान में रखते हुए कार्रवाई की जानी चाहिए।

मानव गतिविधियों को इसी सिद्धांत के साथ नियोजित और निष्पादित किया जाना चाहिए और प्राकृतिक संसाधनों को नुक्सान पहुंचा रहे या पर्यावरण को प्रदूषित कर रहे कारकों को जहां तक संभव हो रोका जाना चाहिए।

2.9 सतत विकास दृष्टिकोण की सीमाएं और लाभ

पिछले कुछ वर्षों में, "सततशीलता" का विचार तर्क संगत रूप से प्रमुख ढांचा बन गया है, जिस के माध्यम से पर्यावरणीय चिंता का मुद्दा देखा जाता है। हमारी भूमि और समुद्रों के संरक्षण, व्यापारिक उद्यमों, शहरी नियोजन, खाद्य उत्पादन प्रणाली और वैश्विक जलवायु परिवर्तन-सभी पर विचार-विमर्श किया जा रहा है, और कुछ मामलों में नीति "सततशीलता" के आधार पर लागू की जा रही है ।लेकिन क्या पर्यावरणीय मुद्दों के लिए एक मात्र सततशीलया सबसे ज्यादा वांछनीय रूपरेखा है? सततशील दृष्टिकोण की सीमाएं और लाभ क्या हैं, और किस प्रकार के वैकल्पिक संकल्पनात्मक दृष्टिकोण बेहत रहो सकते हैं?

ब्रुंडलैंड परिभाषा की कमी यह है कि यह व्यावहारिक से अधिक प्रेरणादायक है।यह सटीक और मापनीय नहीं है, इसलिए इसके अर्थ से ज्यातर लोग सहमत नहीं होते है।इसकी परिभाषा पर अक्सर विवाद देखने को मिलता है। वैश्विक गरीबी की समस्या को हल करने सहित परिभाषा भी गुंजाइश के जाल में गिर गई है ।यह एक ऐसे विकास की बात करता है जिसमे जिसमें विकसित देशों द्वारा उत्पन समस्या का हल करने के लिए अविकसित देशों के योगदान की बात की जाती है जिस पर अनेक अविकसित देशों को आपत्ति है।इसकी एक हानि यह भी है कि सतत विकास के लिए संचालन चलाने की लागत गैर पर्यावरणीय अनुकूल तरीकों की लागत से कहीं अधिक होती है।

सतत विकास एवं पर्यावर्णीय दृस्टि से सुरक्षित सामान और सेवाओं को बनाने के लिए सामान्यतः अधिक खर्चा आता है जिससे उत्पाद और सेवाएं महँगी हो जाती हैं और गरीब आदमी पर आर्थिक भार बढ़ता है।

सतत विकास के कार्यक्रम को पूरा करने के लिए आवश्यक व्यापक और नए प्रकार के बुनियादी ढांचे का निर्माण करना होगा जो कीमतों में और इजाफा करेगा।यह किसी विकासशील देश में नए उद्योग या कंपनियों को स्थापित करने में भी अवरोध उत्पन्न कर सकता है क्योंकि कई कंपनियों के लिए, समस्या यह नहीं है कि सतत विकास असंभव है, लेकिन यह आर्थिक रूप से कम फायदेमंद है और इसके लिए अधिक काम की आवश्यकता है, जो कंपनी के अस्तित्व के लिए खतरा बन जाती है।

तालिका 02:सतत विकास की सीमाएं एवं लाभ

क्र.सं.	सीमाएं	लाभ
1	अल्पावधि में कम आर्थिक इसलिए महंगा हो सकता है	स्थानीय लोगों को शामिल करता है औरउन्हें पुरस्कृत, रोजगार, आय और शिक्षा प्रदान करता है
2	अधिक शोषण के जोखिम	आर्थिक लाभों की एक विस्तृत श्रृंखला प्रदान करतेहुए प्रणाली की कार्य क्षमता और विविधता को संरक्षित करता है
3	गहन अनुसंधान और नियोजन की आवश्यकता है	गैर-लकड़ी वन उत्पादों (एनडब्ल्यूएफपी) सहित वन उत्पादों के विविधीकरण को बढ़ावा देता है।
4	बाजारों में बुनियादी ढांचे के विकास की आवश्यकता हो सकती है	जंगलों द्वारा प्रदान की जाने वाली प्राकृतिक सेवाएं सुरक्षित रखताहै
5	समझौता औ रसंचार की आवश्यकता हो सकती है	आधुनिक, मुक्तबाजार, समाज में स्वदेशी लोगों के लिए एक जगह उपलब्ध कराये जाने चाहिए

2.10 सारांश

पर्यावरण के लिए नैतिक ढांचा स्थापित करना एक चुनौतीपूर्ण कार्य है जिसमें विभिन्न चिंताओं को एकीकृत करना चाहिए।इसलिए पर्यावरणीय ज़िम्मेदारी के लिए एक व्यापक वैचारिक ढांचे को उन तरीकों और विकासशील प्रणालियों में रहने पर जोर देना चाहिए जो पारिस्थितिक संसाधनों, स्थानों और प्रक्रियाओं को कम, बाधित या नष्ट नहीं करते हैं। सतत विकास, विकास की ऐसीही एक अवधारणा है जो आर्थिक रूप से व्यवहार्य, सामाजिक रूप से स्वीकार्य है और पर्यावरणकी दृष्टि से संतुलित हो।सतत विकास, एक तरह से, एक प्रक्रिया है जो आने वाली पीढ़ियों की जरूरतों को ध्यान में रखते हुए वर्तमान पीढ़ी की जरूरतों को संतुलित करती हैतथा मानवता और प्रकृति के कल्याण के लिए आवश्यक है।आज सतत एकीकरण आर्थिक एकीकरण के सभी स्तरों पर एक अपरिहार्य वास्तविकता बन गया है।सावधानी, रोकथाम और मूल्यांकन सतत विकास के शुरुआती बिंदु हैं; उन्हें प्रत्येक विकास परियोजना की योजना और कार्यान्वयन का एक अभिन्न हिस्सा बनाना होगा।सतत विकास केवल दीर्घकालिक परिप्रेक्ष्य में हासिल किया जा सकता हैऔरसतत विकास के सिद्धांत एक बेहतर भविष्य हेतु मार्गदर्शन प्रदान करते हैं।स्थायी विकास प्राप्त करने के लिए सभी का सहयोग और साझेदारी की आवस्यकता होती हैऔरस्थायित्व की अवधारणा से लोगों को उनके कार्यों और भविष्य की पीढ़ियों के कल्याण के दीर्घकालिक परिणामों के बारे में सोचने के लिए प्रोत्साहित किया जा सकता है।सतत विकास प्राप्त करने के लिए हमे पहले गरीबी और भुखमरी का अंत करना होगा, शिक्षा और स्वास्थ्य देखभाल और लिंग समानता के बेहतर मानकों को अपनाना होगा, नौकरियों और मजबूत

अर्थव्यवस्थाओं को बढ़ावा देने के दौरान सतत आर्थिक विकास पर बल देना होगा, जलवायु परिवर्तन, प्रदूषण और अन्य पर्यावरणीय कारकों से,जो लोगों के स्वास्थ्य, आजीविका और जीवन को नुकसान पहुंचा सकते हैं, निपटने के रास्ते ढूढ़ने होंगे।

2.11अभ्यासप्रश्न

1.बहुविकल्पी प्रश्न

1. सतत विकास में तीन हिस्से हैं। कौन सा विकल्प उनका वर्णन करता है?

क. अपशिष्ट, वायु गुणवत्ता और जैव विविधता।

ख. सामाजिक समानता, मानवाधिकार और स्वास्थ्य।

ग. सामाजिक, पर्यावरण और अर्थव्यवस्था।

घ. धन, आर्थिक विकास और गरीबी।

2. पृथ्वी सम्मेलन का आयोजन 1992 में कहाँ किया गया था?

क स्टॉकहोम में

ख रियो में

ग क्योटो में

घ जोहान्सबर्ग में

3. निम्नलिखित में से कौन सा सतत विकास का उद्देश्य नहीं है?

क. परिवार नियोजन कार्यक्रम को लागू करना जारी रखें।

ख. कृषि भूमि का एक गतिशील संतुलन बनाए रखें और कृषि विकास रणनीति को लागू करें

ग. सकल विकास, उत्पाद विकास और कृषि मूल्य के प्रत्येक इकाई के लिए पानी की खपत को कम करके जल संसाधनों का गतिशील संतुलन बनाए रखें

घ. पर्यावरण के क्रमिक और कभी-कभी विनाशकारी परिवर्तन लाना

4. सतत विकास के प्राथमिक लक्ष्य क्या हैं?

I. गरीबी और भूख का अंत

II. शिक्षा और स्वास्थ्य देखभाल के बेहतर मानकों - विशेष रूप से यह पानी की गुणवत्ता और बेहतर स्वच्छता से संबंधित है

III. लिंग समानता प्राप्त करने के लिए

IV. नौकरियों और मजबूत अर्थव्यवस्थाओं को बढ़ावा देने के दौरान सतत आर्थिक विकास

कोड:

क. I, II और III

ख. I, III और IV

ग. I और III

घ. I, II, III और IV

5. 'सतत विकास' शब्द कब अस्तित्व में आया था?

क. 1987

ख. 1980

ग. 1978

घ. 1992

6. मार्गदर्शन सिद्धांतों के संदर्भ में सतत विकास के मानकों से संबंधित निम्नलिखित बयान/ बयानों में सही उत्तर चुनें:

I. सतत विकास की अवधारणा को समझने में सहायता करें

II. इसके साथ जुड़े समस्याओं को इंगित करें

III. सक्रिय नीति उपायों को चुनने में मदद करें

कोड:

क. I, II और III

ख. II और III

ग. I और IV

घ. I और II

उत्तर कुंजी:1. ग; 2. ख; 3. घ; 4. घ; 5. ख; 6. क

2. लघुउत्तरीयप्रश्न

1. सतत विकास कैसे परिभाषित किया जाता है?

2. सतत विकास का मुख्य लक्ष्य क्या है?

3. सतत विकास जरूरी क्यों है?

4. सहस्राब्दि विकास लक्ष्य से सतत विकास के वैश्विक लक्ष्यों किस तरह से भिन्न होते हैं?

5. आर्थिक उन्नति एवं आर्थिक विकास में क्या अंतर है?

6. सतत विकास की अवधारणा का उदय क्यों हुआ?

3. निबंधात्मक प्रश्न

1. सतत विकास से आप क्या समझते हैं तथा सहस्राब्दी विकास लक्ष्य क्या हैं?

2. जलवायु परिवर्तन से सततशीलता कैसे संबंधित है? क्या जलवायु परिवर्तन नीतियां सतत विकास में योगदान दे सकती हैं?

3. सततशीलता और विकास में क्या सम्बन्ध है? आर्थिक, समावेशी एवं सतत विकास से आप क्या समझते हैं?

4. सतत विकास क्या है? इसके उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए संयुक्त राष्ट्र संघ के प्रयासों की विवेचना कीजिये।

5. सतत विकास के मुख्य उद्देश्यों और सिद्धांतों की व्याख्या कीजिये।

6. सतत विकास दृष्टिकोण की सीमाओं और लाभ की विवेचना कीजिये।

सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. Theories of Sustainable Development (2015). Edited by Judith C. Enders and Moritz Remig, Routledge, 2 Park Square, Milton Park, Abingdon, Oxon OX14 4RN

2. Simon Dresner (2008). The Principles of Sustainability, Earthscan Publication, Dunstan House, 14a St Cross St, London, EC1N 8XA, UK

3. Jennifer A. Elliott (2013). An Introduction to Sustainable Development, Routledge, 2 Park Square, Milton Park, Abingdon, Oxon OX14 4RN

Island Publishing House, Inc., Philippines

इकाई -3

सतत विकास मापदंड:- प्रगति और सफलता मापन

इकाई संरचना

3.1 उद्देश्य

3.2 प्रस्तावना

3.3 सतत विकास लक्ष्य

3.4 सतत विकास के मापदंड

3.5 भारत में सतत विकास

3.6 सारांश

3.1 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन से आप

- सतत विकास लक्ष्यों को समझा सकेंगे।
- सतत विकास के मापदंड को समझ सकेंगे।

3.2 प्रस्तावना

1 9 87 में संयुक्त राष्ट्र को अपनी रिपोर्ट में पर्यावरण और विकास (ब्रुंडलैंड आयोग) पर विश्व आयोग ने अपनी जरूरतों को पूरा करने के लिए भविष्य की पीढ़ी की क्षमता समझौता किए बिना वर्तमान की जरूरतों को पूरा करने के रूप में टिकाऊ विकास को परिभाषित किया। 1 99 2 में ब्राजील में रियो डी जेनेरो में आयोजित पृथ्वी शिखर सम्मेलन नामक पर्यावरण और विकास (यूएनसीईडी) पर संयुक्त राष्ट्र सम्मेलन के दौरान अपनाए गए एजेंडा 21 को सामाजिक, आर्थिक और पर्यावरणीय रूप से टिकाऊ विकास के तरीके पर एक नीला प्रिंट है।

3.3 सतत विकास लक्ष्य

1. गरीबी के सभी रूपों को सर्वग समाप्त करना।

2. भुखमरी को समाप्त करना, खाद्य सुरक्षा प्राप्त करना और पोषण में सुधर लाना तथा सम्पोषणीय कृषि को बढ़ावा देना।

3. स्वास्थ्य सुनिश्चित करना और हर उम्र में सभी के लिए तंदुरूस्ती को बढ़ावा देना।

4. समावेशी और साम्यपूर्ण स्तरीय शिक्षा सुनिश्चित करना और सबके लिए आजीवन पठन पाठन के अवसरों को बढ़ावा देना।

5. लिंग संबंधी समानता हासिल करना और सभी महिलाओं एवं बालिकाओं का सशक्तिकरण।

6. सबके लिए जल और स्वच्छता की उपलब्धता और स्थायी प्रबंध्न सुनिश्चित करना।

7. सबके लिए वहनीय, विश्वसनीय और आधुनिक ऊर्जा की उपलब्धता सुनिश्चित करना।

8. सबके लिए स्थायी, समावेशी और सतत आर्थिक विकास, पूर्ण एवं लाभकारी तथा उचित रोजगार को बढ़ावा देना।

9. समुत्थानशील अवसंरचना निर्मित करना, समावेशी एवं संपोषणीय औद्योगिकरण को बढ़ावा देना तथा नवोन्मेष को प्रोत्साहित

करना।

10. देशों के भीतर और आपस में भी असमानता कम करना।

11. शहरों और मानव बस्तियों को समावेशी, सुरक्षित, समुत्थानशील और सम्पोषणीय बनाना।

12. सम्पोषणीय खपत और उत्पादन पैटर्न सुनिश्चित करना।

13. जलवायु परिवर्तन एवं इसके प्रभावों का मुकाबला करने के लिए तत्काल कार्रवाई करना।

14. सतत विकास के लिए महासागरों, समुद्रों और समुद्री संसाध्नों का संरक्षण करना एवं सम्पोषणीय तरीके से उपयोग करना।

15. पृथ्वी के पारिस्थितिकी तंत्रों का संरक्षण, पुनरूधार करना एवंउनके सम्पोषणीय उपयोग को बढ़ावा देना।

16. संपोषणीय विकास के लिए शांतिपूर्ण व समावेशी सोसाइटियों का संवर्धन करना, सबके लिए न्याय सुलभ करना और सभी

स्तरों पर प्रभावी, जवाबदेही व समावेशी संस्थाओं का निर्माण करना।

17. कार्यान्वयन के तरीके सुदृढ़ करना और सम्पोषणीय विकास हेतु वैश्विक भागीदारी को पुनः सक्रिय करना।

3.4 सतत विकास के मापदंड

टिकाऊ विकास का लक्ष्य कई अंतर-संबंधित मानकों के बीच संयुक्त प्रयास के माध्यम से प्राप्त एक परिणाम है और दोनों लंबवत और क्षैतिज स्तरों पर समन्वय की आवश्यकता है। तीन कुंजी, जैसे पर्यावरण, आर्थिक और सामाजिक मानकों के बीच गतिशील त्रिभुज संबंध मौजूद है।

सामाजिक मापदण्ड पर केंद्रित लोग त्रिकोण के व्यापक आधार को सक्रिय सार्वजनिक भागीदारी के रूप में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। आबादी, पर्यावरण और विकास के बीच अंतरसंबंध जटिल है। महत्वपूर्ण कारकों के अलावा, कुशल जनशक्ति क्षमता निर्माण, मजबूत राजनीतिक इच्छाशक्ति और प्रभावी कार्यान्वयन / निगरानी तंत्र सहित संस्थागत मजबूती, सतत विकास के सफल परिणाम के लिए समान रूप से महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

निम्नलिखित **मापदंड** पर विचार किया जा सकता है:

1. पर्यावरण स्थिरता:

पर्यावरण स्थिरता प्राकृतिक संसाधन आधार और जीवन समर्थन प्रणाली की ले जाने की क्षमता के रखरखाव से संबंधित है। यह जैव विविधता के गर्म स्थानों, वन कवर में वृद्धि, वाटरशेड संरक्षण और समग्र दृष्टिकोण को अपनाने के क्षेत्र पर जोर देता है।

पर्यावरणीय खतरों, पर्यावरणीय प्रदूषण में कमी और पर्यावरणीय अनुकूल और हरी प्रौद्योगिकियों का उपयोग वैश्विक स्तर पर पर्यावरणीय समस्याओं जैसे जैव विविधता हानि, अंतर-पीढ़ी के इक्विटी परिप्रेक्ष्य से जलवायु परिवर्तन को कम करने के लिए किया जाता है।

2. आर्थिक स्थिरता:

आर्थिक स्थिरता पर्यावरणीय और सामाजिक स्थिरता को सुरक्षित करने के लिए बैटरी जैसी महत्वपूर्ण ऊर्जा स्रोत प्रदान करती है। यह पर्याप्त बजट, बजट पारदर्शिता और वित्तीय प्रोत्साहन जैसे उपायों के माध्यम से विकास परियोजनाओं के आर्थिक स्व-जीवितता को बढ़ावा देने पर जोर देता है।

फोकस क्षेत्र में शामिल हैं; गरीबी उन्मूलन, प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि, कृषि उत्पादन और हरी सूक्ष्म उद्यमों सहित आय उत्पन्न करने वाली गतिविधियों का प्रचार, लाभ और प्राकृतिक संसाधन लेखांकन के उचित साझाकरण की व्यवस्था की स्थापना।

3. सामाजिक स्थिरता:

सामाजिक स्थायित्व बुनियादी आवश्यकताओं की पूर्ति के साथ मानव पर्यावरण की गुणवत्ता की गुणवत्ता को अपग्रेड करने और सबसे खतरनाक जानवर से सबसे महत्वपूर्ण रचनात्मक संसाधन में बदलने के लिए केंद्रित है। यह स्थानीय समुदायों को संसाधन उपयोग के सतत तरीकों पर अच्छी तरह से सूचित करने पर जोर देता है।

यह विकास के विभिन्न स्तरों पर सक्रिय सार्वजनिक भागीदारी, संरक्षण और विकास गतिविधियों में सहयोगी प्रयासों, सार्वजनिक स्वास्थ्य में सुधार, शिक्षा और बुनियादी आवश्यकता, संसाधन उपयोग पर हितधारकों के बीच संघर्ष में कमी सुनिश्चित करता है। यह सार्वजनिक पर्यावरण जागरूकता, बढ़ी हुई लिंग इक्विटी और स्थानीय समुदाय के बीच आत्मविश्वास को आर्थिक रूप से वंचित / हाशिए वाले समूहों पर जोर देने के माध्यम से प्राप्त किया जाएगा।

4. संस्थागत स्थिरता:

बिना कार्रवाई के योजनाएं और कार्यक्रम व्यर्थ अभ्यास का प्रतिनिधित्व करते हैं। सतत पर्यावरणीय नीतियों, योजनाओं, कानूनों, विनियमों और मानकों की सख्त कार्यान्वयन और निगरानी स्थायी विकास के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए अनिवार्य है। पर्यावरणीय और सामाजिक स्थायित्व को संबोधित करने के लिए पर्याप्त कुशल और प्रेरित जनशक्ति और मजबूत संस्थागत क्षमता होनी चाहिए।

फोकस क्षेत्र पर्यावरणीय संरक्षण गतिविधियों में शामिल होने के लिए अंतर्राष्ट्रीय मानक और सार्वजनिक विश्वास के स्वीकृत स्तर पर कम हवा, पानी, मिट्टी, शोर प्रदूषण जैसे जीवन की पर्यावरणीय गुणवत्ता को प्राप्त करने के लिए निहित है। परियोजना प्रबंधन की संस्थागत मजबूती स्थानीय, राष्ट्रीय, क्षेत्रीय से वैश्विक स्तर के महत्व और कानूनी रूप से बाध्यकारी विश्व सम्मेलनों और संधि सहित पर्यावरणीय समस्याओं से निपटने के लिए प्रभावी होनी चाहिए।

3.5 भारत में सतत विकास

पर्यावरण के प्रति सोच-विचार के बगैर आर्थिक विकास के पर्यावरण पर गंभीर प्रभाव पड़ सकते हैं और इससे वर्तमान और भावी पीढ़ियों का जीवन स्तर प्रभावित हो सकता है। पर्यावरण के ऐसे अवक्रमण की समाज को कीमत चुकानी पड़ती है तथा आवश्यक उपचारात्मक उपाय शामिल करते हुए आर्थिक योजना में इसका स्पष्ट ध्यान रखना आवश्यक है। इस तरह सतत्म विकास की चुनौती के लिए पर्यावरण की चिंताओं के साथ-साथ देश की आर्थिक विकास की जरूरतों का एकीकरण आवश्यक है। भारत ने पर्यावरण प्रबंधन में पिछले कुछ वर्षों में सतत विकास की इन चिंताओं को समझा है। राष्ट्रीय पर्यावरण नीति, 2006 ने हमारे सभी विकास क्रियाकलापों में पर्यावरण की चिंताओ को मुख्य धारा में लाने का प्रयास किया है। यह रेखांकित करती है कि सभी की आजीविका की सुरक्षा के लिए और समृद्धि के

लिए पर्यावरण संसाधनों का संरक्षण आवश्यक है, संरक्षण का सर्वाधिक सुरक्षित आधार यह सुनिश्चित करना है कि किसी विशेष संसाधन पर आश्रित व्यक्ति संसाधनों के अवक्रमण के बजाए संरक्षण से बेहतर आजीविका प्राप्त करे।

भारत सरकार ने अपनी विभिन्न नीतियों के माध्यम से पारिस्थितिकी चिंताओं को विकास प्रक्रिया में समाहित किया है ताकि पर्यावरण को अधिक क्षति पहुंचाए बगैर आर्थिक विकास किया जा सके। भारत द्वारा अपनाई गई दृढ़ विकास कार्यसूची में अवसंरचना परियोजना के लिए कठोर पर्यावरण रक्षोपाय, पर्यावरण संबंधी शासन व्यवस्था का सुदृढ़ीकरण, विनियामक संस्थाओं का पुनर्जीवन, नदियों के संरक्षण पर ध्यान केन्द्रित करना तथा वायु एवं जल की गुणवत्ता में नियमित आधार पर सुधार के प्रयास शामिल हैं

भारत के विशिष्ट संदर्भ में सतत विकास प्राप्त करने के लिए पर्यावरण क्यों महत्वपूर्ण है। पर्यावरण संबंधी हमारे मानक विकास प्रक्रिया के लिए निर्देशित सरकारी नीतियों के माध्यम से ऐसे निर्धारित किए जाते हैं, जो पर्यावरण की दृष्टि से व्यावहारिक हों और जनता की समृद्धि में सहायक हों। हमारी पर्यावरण संबंधी नीतियों और कार्यक्रम के व्यापक उद्देश्य इस प्रकार है

- वनस्पति, जीव-जन्तुओ, वनों और वन्य प्राणियों का संरक्षण
- प्रदूषण की रोकथाम और नियंत्राण
- वानिकीकरण और बंजर भूमि को उपजाऊ बनाना
- पर्यावरण सुरक्षा।

एक देश के रूप में भारत जैव-विविधता के संरक्षण, वनों के सतत प्रबंधन, अर्थव्यवस्था की उत्सर्जन मात्रा में कमी लाने और सतत खपत और उत्पादन पद्धति अपनाने में अग्रणी रहा है। भारत विशेष रूप से एक ऐसे विकास पथ पर चल रहा है जिसमें अपनी जरूरतों को पूरा करने के लिए भावी पीढ़ियों की क्षमता से समझौता किए बगैर वर्तमान पीढ़ी की जरूरतों को ध्यान में रखा जाता है। महत्त्वपूर्ण पारिस्थितिक जीवनतंत्रों और संसाध्नों और अमूल्य प्राकृतिक तथा मानव-निखमत विरासत जो जीवनयापन, आजीविकाओं, आर्थिक वृद्धि, तथा मानव कल्याण की व्यापक संकल्पना के लिए आवश्यक है, को सुरक्षित करने और उनका संरक्षण करने के लिए समुचित ध्यान दिया गया है। इसके अलावा, पर्यावरणीय संसाध्नों तक न्यायोचित पहुंच तथा समाज के सभी वर्गों के लिए गुणता सुनिश्चित करने का प्रयास रहा है, विशेषकर यह सुनिश्चित करने के लिए कि वे निर्धन समुदाय जो अपने जीवनयापन के लिए पर्यावरणीय संसाधनो पर सबसे अधिक निर्भर हैं उनकी इन संसाधनो तक सुरक्षित पहुंच सुनिश्चित की जाए।

- **सतत विकास मापदंड:- प्रगति और सफलता मापन**

सतत विकास के संदर्भ में वैश्विक सीमाओं को पारिस्थितिकीय प्रभाव के संदर्भ से समझा जा सकता है, जो उस दबाव का परिचायक है, जो मानवीय कार्यकलाप पारिस्थितिकी तंत्रा पर डालते है। उनकी तुलना जब जैव क्षमता (उपयोगी जैव सामग्री सृजित करने और मानव द्वारा सृजित अपशिष्ट पदार्थों को खपाने की पारिस्थितिकी तंत्रा की क्षमता का पैमाना) से की जाती है तो हमे पता चलता है कि हम लाभ कमा रहे हैं या घाटा उठा रहे हैं। आंकड़े बताते हैं कि विश्व पारिस्थितिकीय अतिक्रमण की स्थिति में रह रहा है। लिंविंग प्लेनेट रिपोर्ट, 2014 के अनुसार वर्ष 2010 में वैश्विक पारिस्थितिकीय फुटप्रिंट 18.1 बिलियन वैश्विक हैक्टेयर (जीएचए) अथवा प्रति व्यक्ति 2.6 (जीएचए) था और पृथ्वी की कुल जैव क्षमता 12 बिलियन (जीएचए) अथवा प्रति व्यक्ति 1.7 जीएचए थी। जैव क्षमता विश्व भर में समान रूप से व्याप्त नहीं है। दुर्भाग्यवश कम आय वाले देशों का सबसे छोटा फुटप्रिंट होता है, लेकिन वे सबसे बड़ी पारिस्थितिकीय हानियों को झेलते हैं। संयुक्त राष्ट्र के सामान्य परिदृश्य यह इंगित करते हैं कि यदि वर्तमान आबादी और खपत की प्रवृत्ति जारी रहती है तो वर्ष 2030 तक हमें अपने भरण-पोषण केलिए दो पृथ्वियों की जरूरत पड़ेगी।

मेकिन्जी रिपोर्ट के अनुसार, भारत शहरी दावानल की दहलीज पर खड़ा है। भारतीय शहरों की आबादी 2008 में 340 मिलियन से बढ़कर वर्ष 2030 तक 590 मिलियन हो जाएगी। 2030 के दशक में भारत के सबसे बड़े शहर बहुत से बड़े-बड़े देशों से भी अधिक बड़े होंगे। जैसे-जैसे आबादी बढ़ेगी, प्रत्येक मुख्य सेवा की मांग में पांच से सात गुना बढ़ोतरी हो जाएगी। गरीबी उन्मूलन, खाद्य और ऊर्जा सुरक्षा, शहरी अपशिष्ट प्रबंधन और पानी की कमी मौजूदा चुनौतियों ये साथ मिलकर के प्रवृत्तियां हमारे निर्मित संसाधनों पर और अधिक दबाव डालेंगी। यदि इन दोनों घटकों को और अधिक अलग नहीं किया गया तो इसके परिणामस्वरूप ऊर्जा की जरूरतों में बढ़ोतरी होगी और उत्सर्जनों में वृद्धि होगी। लेकिन साथ ही, इस चुनौती में बड़े अवसर छिपे बैठे हैं। बहुत से देशों के विपरीत, भारत की आबादी युवा है और इसलिए मानव आबादी से लाभ उठाए जा सकते हैं। वर्ष 2030 के भारत का आधो से अधिक हिस्सा अभी निर्मित किया जाना शेष होने के चलते, हमारे पास मौका है कि हम जीवाश्म ईंधन पर आधरित ऊर्जा प्रणालियों और कार्बन लॉक इन पर अत्यधिक निर्भर होने से बचें, जिसका सामना आज बहुत से औद्योगीकृत देश कर रहे हैं। एक सजग नीतिगत फ्रेमवर्क, जिसमें विकास संबंधी जरूरतों और पर्यावरणीय मुद्दों, दोनों का ध्यान रखा जाए, इन चुनौतियों को अवसरों में बदल सकता है।

सितम्बर 2015 में करार निष्पादन के लिए निर्धारित 2015 पश्च विकास एजेंडा की तरफ राजनीतिक हलचल बढ़ती जा रही है। इसी दिशा में रियो में जून 2012 में आयोजित सतत विकास संबंधी संयुक्त राष्ट्र सम्मेलन (रियो + 20) के परिणाम दस्तावेज ‘‘दि फ्रयूचर वी वांट’’ द्वारा अधिदेशित तीस सदस्यीय खुले कार्यदल में जुलाई 2014 में 17 एसडीजी निर्धारित किए इन सतत विकास लक्ष्यों में व्यापक स्तर पर सम्पोषीय विकास के मुद्दे शामिल हैं और इन लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए एक व्यापक उद्देश्य के तौर पर कार्यान्वयन के साधनो पर भी ध्यान केन्द्रित किया गया है।

इन लक्ष्यों को संयुक्त राष्ट्र के 2015 पश्च विकास एजेंडा में समेकित किए जाने की संभावना है। वर्तमान में, 2015 पश्च एजेंडा और सतत विकास लक्ष्यों की प्रक्रियाएं इस वर्ष अपने समापन की ओर तेजी से बढ रही है।

घरेलू मोर्चे पर, भारत तीव्र आर्थिक विकास के लक्ष्य से समझौता किए बिना पर्यावरणीय सुरक्षा की और कार्य कर रहा है। तद्नुसार भारत की विकास योजनाओं में आर्थिक विकास और पर्यावरण पर संतुलित बल दिया जाता है। देश में महत्वपूर्ण पर्यावरणीय उपाय किए गए हैं जिनके उद्देश्यों में नदियों का संरक्षण, शहरी वायु की गुणवत्ता में सुधर, वन रोपण में वृद्धि, नवीकरणीय ऊर्जा प्रौद्योगिकियों की संस्थापित क्षमता में जबरदस्त बढ़ोत्तरी करना, सार्वजनिक परिवहन को अपनाना और ग्रामीण एवं शहरी अवसंरचना में बढ़ोत्तरी करना शामिल है। हालिया उपायों में ये शामिल हैं। 'स्वच्छ भारत मिशन, निर्मल गंगा योजना, राष्ट्रीय सौर मिशन, के लक्ष्य में पांच गुना वृद्धि करना जिसे 20,000 मेगावाट से बढ़ाकर 1,00,000 मेगावाट किया जाएगा, जिसके लिए 100 बिलियन अमरीका डालर के अतिरिक्त निवेश की आवश्यकता होगी, सतत् विकास के लिए समेकित नीतियों के साथ '100 स्मार्ट सिटीज' का विकास और राष्ट्रीय वायु गुणवत्ता सूचकांक तथा राष्ट्रीय वायु गुणवत्ता योजना बनाने की तैयारी करना।

संक्षेप में, जलवायु परिवर्तन और सतत् विकास के मुद्दे पर राजनीतिक जागरूकता, अंन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्रा में और घरेलू मोर्चे पर, दोनों में काफी बढ़ोत्तरी हुई है। भारत समेत अनेक विकासशील देशों में जलवायु परिवर्तन की समस्याओं का समाधन करने में उल्लेखनीय प्रगति की गई है। वर्ष 2015 में, पेरिस करार से पहले अनेक कार्यक्रम आयोजित किए जाने की संभावना है। आज जबकि हम जलवायु परिवर्तन पर 2015 करार के बाद की स्थितियों के लिए मिल कर कार्य कर रहे हैं, यह सुनिश्चित करना बेहद जरूरी है कि नया करार, व्यापक, सन्तुलित, साम्यपूर्ण और व्यवहारिक हो। इस करार में, भारत जैसे विकासशील देशों की वास्तविक जरूरतों का समाधन किया जाना चाहिए। इस करार में, उनके लिए साम्यपूर्ण कार्बन और विकास गुंजाइश होनी चाहिए ताकि वे सतत विकास कर सके और गरीबी मिटा सकें। यह हासिल करने के लिए यूएनएपफसीसी के सिद्धान्तों और उपबंधें का पालन करना अत्यावश्यक है। अधिक महत्वपूर्ण बात यह है कि वैश्विक जलवायु संबंधी कार्रवाई, कार्यान्वयन के तरीकों विशेषकर वित्त साधनो और प्रौद्योगिकी पर बहुत अध्कि निर्भर है, जिसके लिए इस करार में पर्याप्त ध्यान दिए जाने की जरूरत है। जैसाकि प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी ने सितम्बर 2014 में संयुक्त राष्ट्र संघ की महासभा में कहा ''हमें इन चुनौतियों का सामना करने में अपनी जिम्मेदारियां उठाने में ईमानदार होना चाहिए। विश्व समुदाय सामूहिक कार्रवाई के खूबसूरत संतुलन पर सहमत हुआ है साझी लेकिन अलग-अलग जिम्मेदारियां। यही सतत कार्रवाई का आधर भी होना चाहिए।''

3.6 सारांश

1 9 87 में संयुक्त राष्ट्र को अपनी रिपोर्ट में पर्यावरण और विकास (ब्रुंडलैंड आयोग) पर विश्व आयोग ने अपनी जरूरतों को पूरा करने के लिए भविष्य की पीढ़ी की क्षमता समझौता किए बिना वर्तमान की जरूरतों को पूरा करने के रूप में टिकाऊ विकास को परिभाषित किया। सामाजिक मापदण्ड पर केंद्रित लोग त्रिकोण के व्यापक आधार को

सक्रिय सार्वजनिक भागीदारी के रूप में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। आबादी, पर्यावरण और विकास के बीच अंतरसंबंध जटिल है। महत्वपूर्ण कारकों के अलावा, कुशल जनशक्ति क्षमता निर्माण, मजबूत राजनीतिक इच्छाशक्ति और प्रभावी कार्यान्वयन / निगरानी तंत्र सहित संस्थागत मजबूती, सतत विकास के सफल परिणाम के लिए समान रूप से महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। भारत सरकार ने अपनी विभिन्न नीतियों के माध्यम से पारिस्थितिकी चिंताओं को विकास प्रक्रिया में समाहित किया है ताकि पर्यावरण को अधिक क्षति पहुंचाए बगैर आर्थिक विकास किया जा सके। भारत द्वारा अपनाई गई दृढ़ विकास कार्यसूची में अवसंरचना परियोजना के लिए कठोर पर्यावरण रक्षोपाय, पर्यावरण संबंधी शासन व्यवस्था का सुदृढ़ीकरण, विनियामक संस्थाओं का पुनर्जीवन, नदियों के संरक्षण पर ध्यान केन्द्रित करना तथा वायु एवं जल की गुणवत्ता में नियमित आधार पर सुधार के प्रयास शामिल हैं।

इकाई 4 पर्यावरणीय मुद्दे: अर्थ और अवधारणाएं

4.1 उद्देश्य

4.2 प्रस्तावना

4.3 पर्यावरण संरक्षण का महत्त्व

4.4 वैश्विक पर्यावरणीय मुद्दे

4.4.1 हरितगृह प्रभाव और भूमंडलीय ऊष्मीकरण

4.4.2 समतापमण्डल में ओजोन अवक्षय:

4.4.3 जैव विविधता का नुकसान:

4.4.4 जनसंख्या विस्फोट:

4.4.5 रेगिस्तानीकरण:

4.4.6 अम्लीय वर्षा:

4.4.7 प्रदूषण और प्राकृतिक संसाधन की कमी:

4.4.8 खतरनाक अपशिष्टों का खराब प्रबंधन:

4.5 चुनौतियाँ एवं समाधान:

4.6 सारांश:

4.7 अभ्यास प्रश्न

4.1 उद्देश्य

सतत विकास के लिए,एक स्वस्थ पर्यावरण की आवश्यकता होती है। हमारी यह इकाई विश्व की विभिन्न पर्यावरणीय चिंताओं एवं मुद्दों की ओर आपका ध्यान आकर्षित कराती है, तथा आपको उनसे सम्बंधित विभिन्न समस्याओं से अवगत कराती है। इस इकाई का अध्ययन करने के बाद, आप पर्यावरणीय निम्नीकरण और प्रमुख वैश्विक पर्यावरणीय मुद्दों की पहचान कर सकेंगे जो वर्तमान दुनिया के लिए एक प्रमुख चिंता का विषय हैं तथा पर्यावरण के जीवित और गैर–जीवित घटकों पर ग्लोबल वार्मिंग के प्रमुख प्रभावों का आकलन और सूची करने में सक्षम होंगे।

4.2 प्रस्तावना

पर्यावरण के मुद्दे आज एक गंभीर चिंता का विषय है। मानव आबादी बहुत तीव्र गति से बढ़ रही है। वर्ष 2050 तक, वैश्विक मानव आबादी 2 अरब लोगों तक बढ़ने की उम्मीद है, जिससे पूरे विश्व में मानव

जनसंख्या 9.6 अरब लोगों के स्तर तक पहुंच जायेगी। बढ़ती मानव जनसंख्या में कारण सहायक प्राकृतिक संसाधनों जैसे अन्न, जल, आवास हेतु अधिक भूमि एवं सेवावों जैसे बिजली, सड़क, वाहन, रोजगार, उद्योग और अन्य वस्तुओं की माँग में भी वृद्धि हुई है। परिणामस्वरूप, हमारे प्राकृतिक संसाधनों का शोषण बढ़ा है जिसने वायु, जल तथा भूमि प्रदूषण सहित कई पर्यावरणीय जटिल मुद्दों को जन्म दिया है जो ध्यान देने योग्य हैं। हमारी आज की आवश्यकता है कि विकास की प्रक्रिया को धीमा किये बिना प्राकृतिक संसाधनों का सतत उपयोग करें तथा उनके निम्नीकरण को रोकें, ताकि ये संसाधन हमारी आने वाली पीढ़ियों को भी अपने अस्तित्व को बनाये रखने हेतु उपलब्ध हों।

4.3 पर्यावरण संरक्षण का महत्त्व

पर्यावरण संरक्षण प्राकृतिक पर्यावरण की रक्षा करने का एक अभ्यास है जो पर्यावरण और मनुष्यों दोनों के लाभ के लिए व्यक्तिगत, संगठनात्मक या सरकारी स्तर पर किया जाता है। पृथ्वी पर जीवन का अस्तित्व और विकास बदलती परिस्थितियों के अनुकूल होने पर निर्भर करता है। पिछले दो दशकों में वैश्विक पर्यावरणीय परिवर्तनों – उनकी प्रक्रियाओं, प्रभावों और प्रतिक्रिया विकल्पों के संबंध में शोध अवधारणाओं और विधियों का तेजी से विकास हुआ है। मूल पर्यावरण अनुसंधान के तीन घटक होते हैं अंतर्निहित प्रक्रियाओं को समझना (मानव स्वास्थ्य पर प्रभाव सहित पर्यावरण प्रणालियों को चलाने वाली प्रक्रियाओं की जांच), उपकरणों का विकास (मापन तकनीक, प्रतिरूप और विधियों सहित अभिनव शोध उपकरण का विकास और प्रदर्शन) और आधार–सामग्री (डेटा) का अधिग्रहण (सटीक, दीर्घकालिक पर्यावरण डेटा का संग्रह और प्रसार)। इन प्रक्रियाओं के बारे में हमें यह समझने की जरूरत है कि पर्यावरणीय समस्याओं का कैसे संबंध है, कैसे एक समस्या के समाधान दूसरों को प्रभावित कर सकते हैं, और प्रस्तावित पर्यावरणीय प्रबंधन रणनीतियाँ केवल लक्षणों का इलाज कर रहे हैं या सतत समाधान की दिशा में अग्रसर हैं।

पृथ्वी की भी एक 'वहन क्षमता' होती है, जिसके बाद प्रकृति स्वयं अपने हाथों में नियंत्रण लेती है और भयंकर आपदाओं एवं समस्याओं के माध्यम से जनसंख्या को नियंत्रित करने का प्रयास करती है। हमें प्राकृतिक संसाधनों का उचित उपयोग करना चाहिए, उनका शोषण नही करना चाहिए। उनका उतना ही उपयोग करना चाहिए, जितने में हमारी आवश्यकताओं की पूर्ती हो जाए तथा संसाधनों के पुनर्जनन चक्र भी प्रभावित न हो, ताकि ये भविष्य की पीढ़ियों के लिए भी बचे रहें और वो भी उनका सतत उपयोग कर सकें।व्यापक रूप से, पारिस्थितिकी के चार मुख्य घटक हैं जो मानव गतिविधियों द्वारा दीर्घकालिक आधार पर काफी प्रभावित हो सकते हैं:

(1) **जलवायु प्रणाली:**ओजोन परत का विनाश, अम्लीय जमावट का उत्पादन और ग्रीनहाउस गैसों और अन्य हानिकारक गैसों और एयरोसोल जैसे हाइड्रोकार्बन और निकास कण का उत्सर्जन,

(2) **पारिस्थितिकी के कार्बनिक और अकार्बनिक घटकों के बीच तालमेलः** विभिन्न रासायनिक पोषक तत्वों जैसे कार्बन, नाइट्रोजन और फास्फोरस के चक्र,

(3) **जल चक्र पर प्रभावः**प्रदूषण, मानववंशीय प्रेरित सूखे और बाढ़, और नदियों और अनुमानों को कम करने के लिए क्षरण के अवशोषण और अवशोषण की प्रक्रियाओं में योगदान करने वाली गतिविधियां और

(4) **प्राकृतिक पर्यावरण पर प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष मानव प्रभावः**लुप्तप्राय प्रजातियों के विलुप्त होने, जैव–विविधता में कमी और दुनिया के विभिन्न क्षेत्रों के वनस्पति चरित्र में परिवर्तन का कारण

4.4 वैश्विक पर्यावरणीय मुद्दे

मानव सभ्यता और वैश्वीकरण वर्तमान परिदृश्य में वैश्विक पर्यावरण में निरंतर परिवर्तन के प्रमुख अपराधी हैं।कोई भी विकास हेतु मानव गतिविधि इसके साथ–साथ कई दुष्प्रभाव लाती है। ये प्रतिकूल परिवर्तन अक्सर पर्यावरणीय मुद्दों का कारण बनते हैं जो पर्यावरण के प्राकृतिक संतुलन को प्रभावित करते हैं। पर्यावरणीय मुद्दे जैवभौतिक पर्यावरण पर मानव गतिविधि के हानिकारक प्रभाव हैं। पर्यावरणीय मुद्दे मुख्यतः दो प्रकार के हो सकते हैं, स्थानीय एवं वैश्विक। स्थानीय और वैश्विक पर्यावरणीय मुद्दों में विभिन्न अवधारणाएं, प्रदूषक और प्रभाव होते हैं। स्थानीय मुद्दे स्थानीय महत्व और शहर या देश विशिष्ट के होते हैं जबकि वैश्विक पर्यावरणीय मुद्दे अंतरराष्ट्रीय स्तर पर पर्यावरण पर प्रतिकूल प्रभाव डालते हैं एवं पूरे विश्व के लिए चिंता का विषय होते हैं या कहें पृथ्वी पर जीवन के लिए हानिकारक होते हैं। विश्व के प्रमुख वर्तमान पर्यावरणीय मुद्दों में हरितगृह प्रभाव और भूमंडलीय ऊष्मीकरण, जैव विविधता हानि, मरुस्थलीकरण, ओजोन परत रिक्तिकरण, अम्लीय वर्षा, प्रदूषण और प्राकृतिक संसाधन की कमी, खतरनाक अपशिष्टों का खराब प्रबंधन आदि शामिल हैं। लगभग सभी प्रक्रियाएं प्राकृतिक संसाधनों के उपयोग को अविश्वसनीय तरीके से उपयोग करने का परिणाम हैं। इन प्रक्रियाओं के हमारे पर्यावरण पर अत्यधिक नकारात्मक प्रभाव पड़ता है।

4.4.1 हरितगृह प्रभाव और भूमंडलीय ऊष्मीकरण(Greenhouse Effect and Global Warming)

ग्रीन हाउस एक छोटा ग्लास का घर जैसा होता है जिसका उपयोग खासकर शीत ऋतु में तापमान को नियंत्रित कर पौधों को उगाने के लिये किया जाता है। ग्लास पैनल प्रकाश को अन्दर तो आने देता है लेकिन ताप को बाहर नहीं निकलने देता। जिससे ग्रीन हाउस में बाहर की अपेक्षा अधिक तापमान बना रहता है। ग्रीनहाउस प्रभाव या हरितगृह प्रभाव (greenhouse effect) एक प्राकृतिक प्रक्रिया है जिसके द्वारा किसी ग्रह या उपग्रह के वातावरण में मौजूद कुछ गैसें वातावरण के तापमान को अपेक्षाकृत अधिक बनाने में मदद करतीं हैं, जिन्हें हरितगृह गैसें या ग्रीन हाउस गैसों के नाम से जाना जाता है।

इन ग्रीनहाउस गैसों में कार्बन डाई आक्साइड(CO_2), जलवाष्प (Water vapors), नाइट्रस ऑक्साइड(N_2O), मिथेन(CH_4) आदि शामिल हैं क्योंकि वे आसानी से इन्फ्रारेड विकिरण को अवशोषित करते हैं। अन्य ग्रहों की तुलना में पृथ्वी का तापमान स्थिर एवं जीवन के लिए उपयुक्त है, इसका मुख्य कारण पृथ्वी के वातावरण में विभिन्न गैसों की उपस्थित है। ये गैसें सूर्य की रोशनी को अंदर तो आने देती हैं किन्तु, धरती की सतह से विकीर्ण गर्मी को वापस पृथ्वी से बाहर नहीं जाने देती हैं, जिससे वातावरण के तापमान को अपेक्षाकृत अधिक बढ़ाने में मदद मिलती हैं तथा पृथ्वी का तापमान संतुलित रहता है। पृथ्वी के तापमान को संतुलित करने के लिए ये गैसें अत्यंत महत्वपूर्ण होती हैं, अगर ये गैसें वातावरण में न हो तो पृथ्वी का तापमान औसतन 33 डिग्री सेंटीग्रेड ठंडा होगा जो अभी औसतन 15 डिग्री सेंटीग्रेड होता है। चूंकि ये गैस हमारे ग्रह को .ग्रीनहाउस की तरह गर्म करते हैं, उन्हें ग्रीनहाउस गैसों के रूप में जाना जाता है और वे वातावरण में जो प्रभाव पैदा करते हैं उसे ग्रीनहाउस प्रभाव कहा जाता है।वैश्विक तापमान प्राकृतिक ग्रीन हाउस के प्रभाव से 15° सेल्सियस तक बनाये रखते हैं। इस घटना के बिना, औसतन वैश्विक तापमान –17° सेल्सियस होता है और इतने कम तापमान में जीवन का अस्तित्व नहीं रह पायेगा।

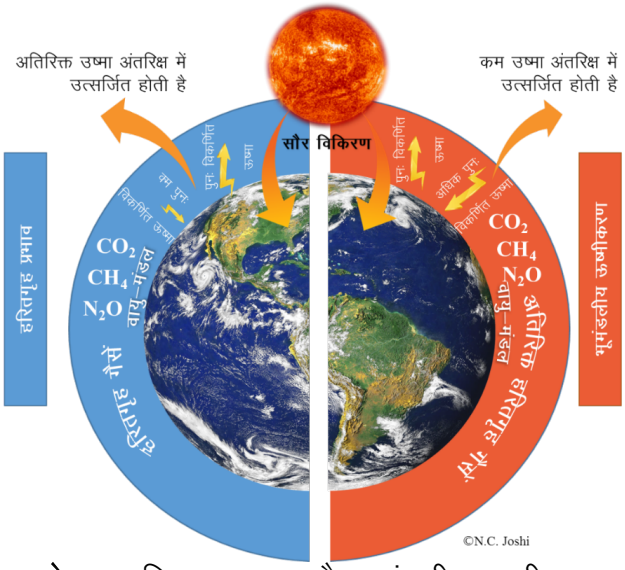

आरेख1: हरितगृह प्रभाव और भूमंडलीय ऊष्मीकरण

ग्लोबल वार्मिंग दुनिया भर में वार्षिक औसत तापमान में वृद्धि को दर्शाती है। वातावरण में ग्रीनहाउस गैसों की मात्रा के बढ़ने से वातावरण में ज्यादा पुनः विकर्णित ऊष्मा रूकती है जिस से ग्रह औसतन गर्म होने लगता है। इस प्रभाव को वैश्विक ऊष्मीकरण के नाम से जाना जाता है। औद्योगिक क्रांति के बाद से, ग्रीनहाउस प्रभाव को मनुष्यों द्वारा वायुमंडल में उत्सर्जित ग्रीनहाउस गैसों के कारण बढ़ाया गया है। औद्योगिक क्रांति की शुरुआत के बाद, वायुमंडलीय CO_2 के स्तर में 40 प्रतिशत से अधिक की वृद्धि हुई है, यह 1800 में लगभग 280ppm (parts per million) था और आज 400ppmहै।

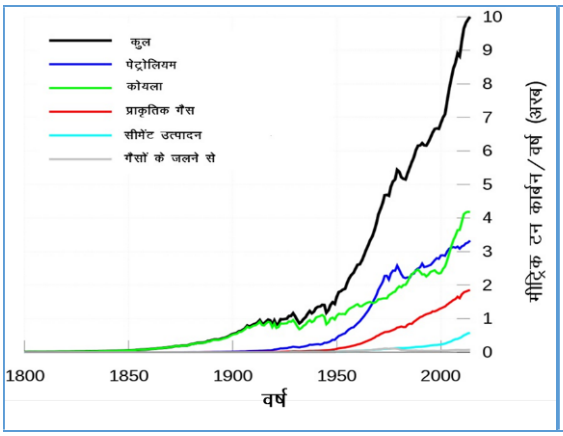

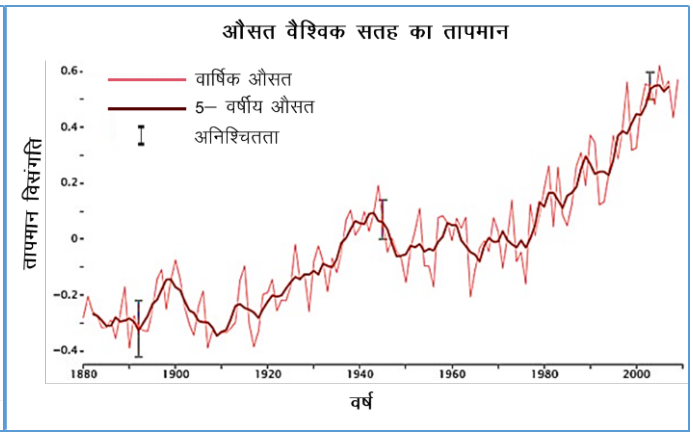

आरेख 2: वैश्विक जीवाश्म कार्बन उत्सर्जन **आरेख 3:** वैश्विक सतह का तापमान (1880 से 2009 तक)

इस प्रकार, मनुष्य अधिक ग्रीनहाउस गैसों को उत्सर्जित करते हैं और वे गैस वायुमंडल में रहकर अधिक गर्मी बरकरार रखते हैं। यह दुनिया भर में औसत वार्षिक तापवृद्धि का कारण बनता है।

यदि ग्लोबल वार्मिंग जारी रही, तो यह महत्वपूर्ण जलवायु परिवर्तन, समुद्र के स्तर में वृद्धि, महासागर अम्लीकरण में वृद्धि, चरम मौसम की घटनाओं और अन्य गंभीर प्राकृतिक और सामाजिक प्रभावों का कारण बन जाएगा। कुछ प्रमुख ग्रीन हाउस गैसें और उनके मुख्य स्रोत और कारण निम्न हैं:

सारिणी 1: ग्रीन हाउस गैसें उनके स्रोत और कारण

क्र.सं.	गैसें	स्रोत और कारण
1.	कार्बन डाइऑक्साइड (CO_2)	सीमेंट उत्पादन, वनों की कटाई के साथ ही कोयले, तेल और प्राकृतिक गैस जैसे जीवाश्म ईंधन के दहन से।
2.	क्लोरोफ्लोरो कार्बन (CFC)	एयर कंडीशनिंग, प्रशीतन, फोम, इन्सुलेशन और पैकिंग सामग्री में उड़ने वाले एजेंट, एयरोसोल डिब्बे में प्रणोदक, और सॉल्वैंट्स के रूप में, ऊष्मारोधी फाम, हवाई ईंधन, औद्योगिक और वाणिज्यिक उपयोग।
3.	मीथेन (CH_4)	कोयला खनन और प्राकृतिक गैस और पेट्रोलियम क्षेत्र, जानवरों, मानव और औद्योगिक अपशिष्ट, भूमि भराव, कृषि फसलों के साथ ही जैव भार को जलाने से।
4.	नाइट्रोजन ऑक्साइड (N_2O)	उर्वरक, लकड़ी और फसल अपशिष्टों का जलना, ईंधन दहन, अपशिष्ट जल प्रबंधन, और औद्योगिक प्रक्रियाओं से।

4.4.2 समतापमण्डल में ओजोन अवक्षय

पृथ्वी का वायुमंडल कई परतों से बना है, प्रत्येक परत एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। पृथ्वी की सतह से लगभग 10 किलोमीटर ऊपर फैली पहली परत क्षोभ मंडल के रूप में जाना जाता है। अधिकतर मानव गतिविधियां जैसे छोटे विमान एवं गैस गुबारों को उड़ाना, पर्वतारोहण आदि इसी क्षेत्र में संचालित होती हैं। इस सतह के बाद समताप मंडल लगभग 15 से 60 किलोमीटर तक होता है। ओजोन परत पृथ्वी की सतह से लगभग 20–30 किमी समताप मंडल के निचले क्षेत्र में है। ओजोन एक गैस है जो हमारे वायुमंडल में स्वाभाविक रूप से मौजूद है। ओजोन में रासायनिक सूत्र O_3 है क्योंकि एक ओजोन अणु में तीन ऑक्सीजन परमाणु होते हैं। समताप मंडल के ओजोन परत में ओजोन की सांद्रता आमतौर पर 10 ppm से कम होती है, जबकि वायुमंडल में ओजोन की औसत सांद्रता लगभग 0.3 ppm होती है। ओजोन परत की मोटाई मौसम और भूगोल के अनुसार बदलती है। ओजोन की उच्चतम सांद्रता उष्णकटिबंधीय क्षेत्रों में 26 से 28 किमी (16 से 17 मील) तक और ध्रुवों की ओर 12 से 20 किमी (7 से 12 मील) तक की ऊंचाई में होती है।

समताप मंडल में ओजोन सूर्य के जैविक रूप से हानिकारक पराबैंगनी विकिरण का एक बड़ा हिस्सा अवशोषित करता है, इस प्रकार ओजोन परत ग्रह के चारों ओर सुरक्षा की एक अदृश्य परत की तरह काम करती है।क्लोरो–फ्लोरो कार्बन (CFC) में पाए जाने वाले क्लोरीन और ब्रोमाइड को वायुमंडल की महत्वपूर्ण ओजोन परत के प्रदूषण के लिए जिम्मेदार ठहराया जाता है। यह विषाक्त गैसें ऊपरी वायुमंडल तक पहुंचने के बाद, ओजोन परत में एक छेद का कारण बनते हैं। मुख्य ओजोन–घटाने वाले पदार्थों में क्लोरोफ्लोरोकार्बन (CFC), कार्बन टेट्राक्लोराइड, हाइड्रोक्लोरोफ्लोरोकार्बन (HCFC) और मिथाइल क्लोरोरोफॉर्म शामिल हैं। समताप मंडल में, क्लोरो–फ्लोरो कार्बन से क्लोरीन परमाणु क्लोरीन मोनोऑक्साइड और ऑक्सीजन अणु बनाने के लिए ओजोन के साथ प्रतिक्रिया करते हैं।

$Cl + O_3 \rightarrow ClO + O_2$

क्लोरीन मोनोऑक्साइड, फिर अधिक क्लोरीन परमाणुओं को मुक्त करने के लिए ऑक्सीजन परमाणुओं के साथ प्रतिक्रिया कर सकता है:

$2ClO + O_2 \rightarrow 2Cl + 2O_2$

एक क्लोरीन परमाणु 1,00,000 ओजोन अणुओं को तोड़ सकता है।

$O_3 \leftrightarrow O_2 + O$

$O_2 \rightarrow O + O$

$O + O_2 \rightarrow O_3$ (ओजोन)

ओजोन परत मूल्यवान है क्योंकि यह पृथ्वी तक पहुंचने वाली हानिकारक पराबैंगनी विकिरण को रोकती है। पराबैंगनी विकिरण सूर्य द्वारा उत्सर्जित उच्च ऊर्जा विद्युत चुम्बकीय तरंगें हैं जो पृथ्वी के वायुमंडल में प्रवेश करते हैं, भूमंडलीय ऊष्मीकरण सहित मनुष्यों में, पराबैंगनी विकिरण के संपर्क में आने से कई प्रकार के त्वचा कैंसर विकसित करने का जोखिम बढ़ जाता है। इसके अतिरिक्त कई अन्य स्वास्थ्य संबंधी नकारात्मक प्रभाव हो सकते हैं जैसे आंखों की क्षति हो सकती है और फोटोकैराइटिस (बर्फ अंधापन) और मोतियाबिंद जैसी बीमारियां हो सकती है, इसके अतितिक्त सांस लेने में कठिनाई, सीने में दर्द, गले की जलन, और फेफड़ों को काम करने में कठिनाई का सामना करना पड़ सकता है। पराबैंगनी विकिरण के दुष्प्रभावों को मुख्यतः चार भागों में विभाजित किया जा सकता है,

(i)मनुष्यों पर हानिकारक प्रभाव (त्वचा–कैंसर, मोतियाबिंद, डीएनए क्षति, कॉर्निया क्षति, रेटिना रोग, मानव प्रतिरक्षा प्रणाली में कमी),

(ii)पौधों पर हानिकारक प्रभाव (प्रकाश संश्लेषण को रोकना, उपापचय को रोकना, विकास को दबा देना, कोशिकाओं को नष्ट करना, उत्परिवर्तन का कारण, वन उत्पादकता को नकारना),

(iii)अन्य समुद्री/ताजे पानी के जीव भी पराबैंगनी–किरणों के प्रति बहुत संवेदनशील होते हैं (मछली लार्वा बहुत संवेदनशील होते हैं, प्लैंकटन आबादी गंभीर रूप से क्षतिग्रस्त होती है, मछली/झींगा/केकड़ा लार्वा को प्रभावित करती है),

(iv)गैर–जीवित सामग्रियों पर हानिकारक प्रभाव (रंगलेपों के टूटने में तेजी लाने, प्लास्टिक के टूटने में तेजी लाने, वायुमंडल में तापमान ढाल स्तर को प्रभावित करने, वायुमंडलीय, परिसंचरण पैटर्न, जलवायु परिवर्तन को प्रभावित करना) आदि।

पराबैंगनी (यूवी) विकिरण को तीन रूपों में विभाजित किया जा सकता हैः यूवी–ए (320–400nm के बीच तरंगदैर्ध्य), यूवी–बी (280nm से कम तरंगदैर्ध्य), और यूवी–सी (280nm से कम तरंगदैर्ध्य)। यूवी–सी जैविक प्रणालियों के लिए सबसे हानिकारक है।1970 से पृथ्वी के कुछ क्षेत्रों पर विशेष रूप से अंटार्कटिक क्षेत्र के समतापमंडल में ओजोन की परत में कमी आई है। अंटार्कटिक क्षेत्र में दुनिया के सबसे उत्पादक समुद्री पारिस्थितिक तंत्रों में से एक है। समतापमंडल में ओजोन परत की परत के पतले हो जाने को श्ओजोन छेदश भी कहा जाता है। ओजोन परत की कमी हमारे ग्रह पृथ्वी द्वारा सामना की जाने वाली समस्याओं में सबसे गंभीर समस्याओं में से एक है। यह उन प्रमुख कारणों में से एक है जो भूमंडलीय ऊष्मीकरण की ओर अग्रसर हैं। ओजोन रिक्तीकरण और ओजोन छेद ने कैंसर के खतरों और अन्य

नकारात्मक प्रभावों पर विश्वव्यापी चिंता पैदा की है। इसलिए यह सबसे महत्वपूर्ण वर्तमान पर्यावरणीय समस्याओं में से एक है।

वियना सम्मेलन के आधार पर, 16 सितम्बर, 1987, को ओजोन परत को हटाए जाने वाले पदार्थों पर मॉन्ट्रियल प्रोटोकॉल पर 24 देशों और यूरोपीय आर्थिक समुदाय द्वारा बातचीत और हस्ताक्षर किए गए थे। मॉन्ट्रियल प्रोटोकॉल का उद्देश्य पृथ्वी के ओजोन परत को कम करने वाले रसायनों के उत्पादन और उपयोग को नियंत्रित करना है। 1994 में, संयुक्त राष्ट्र महासभा ने 1987 में मॉन्ट्रियल प्रोटोकॉल पर हस्ताक्षर होने की तारीख को विश्व ओजोन दिवसपर्यावरणीय ओजोन परत के संरक्षण के लिए 16वां अंतर्राष्ट्रीय दिवस के रूप में नामित किया।

5.4.3 जैव विविधता का नुकसान

जैव विविधता या जैविक विविधता एक शब्द है जो पृथ्वी पर रहने वाले जीवों की विविधता का वर्णन करता है। जैव विविधता किसी विशेष क्षेत्र में रहने वाली विभिन्न प्रजातियों की संख्या या बहुतायत को भी संदर्भित करती है। यह हमारे लिए उपलब्ध जैविक संसाधनों की संपत्ति का प्रतिनिधित्व करता है। जैविक विविधता में सूक्ष्मजीव, पौधों, जानवरों और पारिस्थितिक तंत्र जैसे कोरल रीफ, वन, वर्षावन इत्यादि शामिल हैं। जैव विविधता एक प्राकृतिक सम्पत्ति है जो पारिस्थितिकी तंत्र और मानव गतिविधि के अस्तित्व के लिए के लिये आवश्यक होता है।

(i) आवासीय नुकसानःएक आवास एक ऐसा स्थान है जहां एक पौधे या जानवर स्वाभाविक रूप से रहता है। आवास की हानि को खतरे में डाली गई या लुप्तप्राय सभी प्रजातियों में से 85% के मुख्य खतरे के रूप में पहचाना जाता है। इसके लिए जिम्मेदार कारक वनों की कटाई, अतिसंवेदनशीलता, प्रदूषण, ग्लोबल वार्मिंग और आग अधिक उपयोग और शहरीकरण हैं। प्रजातियां जो शारीरिक रूप से बड़ी हैं और जंगलों या महासागरों में रहने वाले लोग आवास में कमी से अधिक प्रभावित हैं। कुछ विशेषज्ञों का अनुमान है कि पृथ्वी पर लगभग 30%प्रजातियां 2050 तक विलुप्त हो जाएँगी। पृथ्वी की जैव विविधता गंभीर खतरे में है। वर्तमान युग में, मानव पृथ्वी की जैव विविधता के विनाश का सबसे खतरनाक कारण है।

(ii)आक्रामक प्रजातियांःआक्रामक प्रजातियां ऐसी प्रजातियां होती हैं जो किसी विशिष्ट स्थान के मूल नहीं होती हैं और ये वह प्रजातियां हैं जो मानव द्वारा गलती से या जानबूझकर किसी क्षेत्र में प्रविष्ट किया जाता हैं। मूल प्रजातियों को भोजन और स्थान के लिए प्रतिस्पर्धा का सामना करना पड़ता है फलस्वरूप ये विदेशी प्रजातियां अपने नए पर्यावरण में स्थापित हो जाती हैं और

अनियंत्रित, स्थानीय जैव विविधता को बढ़ने नहीं देती हैं। ऐसे कई उदाहरण हैं जब विदेशी प्रजातियों के परिचय ने पारिस्थितिकी तंत्र के प्राकृतिक जैविक समुदाय को व्यापक नुकसान पहुंचाया है। उदाहरण के लिए यूकेलिप्टस और कैसुरीना दोनों ऑस्ट्रेलिया से भारत में पेश किए गए पौधे हैं। इन पौधों की उल्लेखनीय तेजी से विकास ने उन्हें लकड़ी का मूल्यवान स्रोत बना दिया है। हालांकि, ये पौधे पारिस्थितिक रूप से हानिकारक प्रतीत होते हैं क्योंकि इनको जिन इलाकों में उगाया जाता है ये उन इलाकों की मूल प्रजातियों को दबाने लगते हैं। कभी–कभी ये जानभूझकर भी किया जाता है जैसे संयुक्त राज्य अमेरिका से पीएल–480 योजना के तहत भारत में आयातित गेहूं को कांग्रेस घास (पार्टनियम हिस्टोरोफोरस) और , मक्का कॉकले (एग्रोस्टेमा जिथैगो) के बीज से दूषित कर दिया गया था। आज यह पूरे भारत में गेहूं के खेतों में एक हानिकारक खरपतवार के रूप में फैल गए हैं। आवासीय नुकसान के बाद इन आक्रामक विदेशी प्रजातियों को जैव विविधता के लिए दूसरा सबसे बड़ा खतरा माना गया है।

(iii) वनों की कटाईः हमारे जंगलों कार्बन डाइऑक्साइड के प्राकृतिक कुंड हैं जो ताजा ऑक्सीजन का उत्पादन करते हैं और साथ ही तापमान और वर्षा को विनियमित करने में भी मदद करते हैं। वर्तमान में जंगलों में 30ः भूमि शामिल है लेकिन अधिकतर भोजन, आश्रय और कपड़े की बढ़ती आबादी की मांग के चलते पनामा देश के बराबर हर वर्ष पेड़ों का कटान हो जाता है। वनों की कटाई का मुख्य उद्देश्य, नए कृषि या शहरी भूमि बनाने के लिए, खनिजों और जीवाश्म ईंधन के शोषण के लिए, जल आपूर्ति और जलविद्युत ऊर्जा के जलाशयों को बनाने के लिए, ईंधन के लिए, राजमार्ग बनाने के लिए, निर्माण और विनिर्माण उद्योगों के लिए लकड़ी प्रदान करने के लिए, या युद्ध के दौरान दुश्मनों का पता लगाने में मदद करने के लिए जानबूझकर हटाना है।

(iv) आखेट/वन्य जीवों का शिकार करनाः जंगली जानवरों का उनके उत्पादों के वाणिज्यिक उपयोग जैसे खाल और त्वचा, दांत, फर, मांस, दवाइयों, प्रसाधन सामग्री, इत्र और सजावट के उद्देश्य इत्यादि के लिए शिकार किया जाता है।

भारत में, गेंडा को उसके सींग, हड्डियों और त्वचा के लिए बाघ, कस्तूरी (औषधीय मूल्य) के लिए कस्तूरी मृग, हाथीदांत के लिए हाथी, त्वचा के लिए घरियल और मगरमच्छ और पशम (फर) के लिए सियार का शिकार किया जाता है। पूरे विश्व में व्हेल सबसे प्रचलित वाणिज्यिक शिकारों में से एक है।

भारत में 9 पशु प्रजातियांऐसी हैं जो अंतरराष्ट्रीय व्यापार के कारण गंभीर रूप से समाप्त होने की कगार पर खड़ी हैं, इनमें फिन व्हेल (*Balaenoptera physalus*), हिमालयी कस्तूरी मृग (Moschus moschiferus), हरा कछुआ (*Chelonia mydas*), हॉक्सबिल कछुआ (*Eretmochelya*

imbricata), ओलिव रिडले कछुए (*Dermochelys olivacea*), समुद्री मगरमच्छ (*Crocodylus porosus*), रेगिस्तान मॉनिटर छिपकली (*Varanus griseus*), पीला मॉनिटर छिपकली (*Varanus flavesoens*) और बंगाल मॉनिटर छिपकली (*Varanus bengalensis*) शामिल हैं।

(v) आवास विखंडनः आवास विखंडन को स्थानिक रूप से निवास के विशाल इलाकों का अप्राकृतिक पृथक्करण या पृथक टुकड़ों में विभाजन के रूप में परिभाषित किया जा सकता है, जो कि एक पारिस्थितिकी तंत्र का अपनी विभिन्न प्रजातियों को एक अनंत भविष्य के लिए बनाए रखने की क्षमता को बाधित कर देता है। आवास विखंडन जैव विविधता के क्षरण के सबसे गंभीर कारणों में से एक है। विखंडन का सबसे गंभीर प्रभाव एक प्रजाति की बड़ी आबादी का एक से अधिक आबादी में पृथक्करण है। इस बात का पर्याप्त सबूत है कि एक खंडित आवास में प्रजातियों की संख्या समय के साथ घट जाएगी, हालांकि संभावित दरों पर यह घटित होगा।

(vi) प्रदूषणः प्रदूषण प्राकृतिक आवास में बदलाव ला सकता है। उदाहरण के लिए जल प्रदूषण विशेष रूप से नदी और तटीय पारिस्थितिक तंत्र के जैविक घटकों के लिए हानिकारक है। जल निकायों में प्रवेश करने वाले जहरीले अपशिष्ट खाद्य श्रृंखला को प्रभावित करते हैं और इससे जलीय पारिस्थितिक तंत्र को नुकसान पहुँचता है। कीटनाशक, उर्वरक में मौजूद सल्फर और नाइट्रोजन ऑक्साइड, अम्लीय वर्षा, ओजोन रिक्तीकरण, वैश्विक ऊष्मीकरण और ध्वनि प्रदूषण इत्यादि भी पौधे और पशु प्रजातियों पर प्रतिकूल प्रभाव डालते हैं और वन्यजीव विलुप्त होने का कारण भी हो सकते हैं।

सुपोषण (Eutrophication) गैर–संसाधित सीवेज (मलइत्यादि) का किसी जलाशय में जमा होने के कारण पानी में पोषक तत्वों जैसे फॉस्फेट और नाइट्रेट में अत्यधिक वृद्धि की प्रक्रिया है जो की वृद्धि में सहायक होता है। पोषक तत्व उर्वरकों के रूप में कार्य करते हैं, जिससे जलाशय में पौधों तथा शैवालों (algae) का असामान्य प्रसार होता है। शैवालों की आबादी के अतिरंजित विकास के साथ, कार्बनिक पदार्थों को विघटित करने वाले वायुजीवी (Aerobic) बैक्टीरिया की संख्या भी बढ़ जाती है। इन बैक्टीरिया का प्रसार पानी में घुली ऑक्सीजन को कम करता है, इसका एक उदाहरण जल में पोषक तत्वों के उच्च स्तर के कारण उसमें श्ब्लूमश पैदा होना है। पानी में ऑक्सीजन की मात्रा कम होने के कारण मछली और अन्य जलीय जीवों की मौत हो जाती है। इसके अलावा, ऑक्सीजन की कमी अवायवीय(Anaerobic) बैक्टीरिया द्वारा अपघटन का कारण बनती है। वात निरपेक्षी (Anaerobes) हाइड्रोजन सल्फाइड को मुक्त करते हैं और उसकी मात्रा को बड़ा देते हैं, जो अन्य जलीय जीवों के लिए पानी को जीवन हेतु अनुपयुक्त बनाता है और एक गंदे गंध का कारण बनता है।

4.4.4 जनसंख्या विस्फोट

ग्रह की आबादी अस्थिर स्तर तक पहुंच रही है क्योंकि इसमें पानी, ईंधन और भोजन जैसे संसाधनों की एक सीमित मात्रा है। कम विकसित और विकासशील देशों में जनसंख्या विस्फोट पहले से ही दुर्लभ संसाधनों पर दबाव बना रहा है। जनसंख्या के बढ़ने से संसाधनों की मांग भी बढ़ती है इसलिए बढ़ती जनसँख्या की मांगों को पूरा करने के लिए खाद्य उर्वरकऔर कीटनाशकों के उपयोग के माध्यम से गहन कृषि का अभ्यास किया जाता है जो पर्यावरण को नुकसान पहुँचाते हैं। जनसंख्या विस्फोट अधिकतर पर्यावरणीय मुद्दों के लिए मुख्य योगदानकर्ताओं में से एक है। गरीबी जनसंख्या विस्फोट का मुख्य कारण है। शैक्षणिक संसाधनों की कमी, उच्च मृत्यु दर के साथ–साथ उच्च जन्म दर की वजह से, गरीब देशों में आबादी में अत्यधिक बढ़ोतरी हो रही है। जनसंख्या विस्फोट अतिसंवेदनशील महत्वपूर्ण पर्यावरणीय समस्याओं में से एक है।

बढ़ती जनसंख्या के परिणामस्वरूप शहरी फैलाव होता है जो पर्यावरण के लिए एक गंभीर खतरा है। शहरी फैलाव से उच्च घनत्व शहरी क्षेत्रों से कम घनत्व वाले ग्रामीण क्षेत्रों तक आबादी का प्रवास होता है जिसके परिणामस्वरूप अधिक से अधिक ग्रामीण भूमि पर शहर फैलता है। शहरी फैलाव के परिणामस्वरूप भूमि में गिरावट, यातायात, पर्यावरणीय मुद्दों और स्वास्थ्य संबंधी मुद्दों में वृद्धि होती है। भूमि की बढ़ती मांग वनस्पतियों और जीवों सहित प्राकृतिक वातावरण को प्रतिस्थापन के बजाय विस्थापित करती है।

4.4.5 रेगिस्तानीकरण

मरुस्थलीकरण या रेगिस्तानीकरण, जलवायु परिवर्तन और मानव गतिविधियों सहित विभिन्न कारकों के कारण शुष्कीकरण, अर्ध–शुष्क और उप–आर्द्र क्षेत्रों में भूमि क्षरण की प्रक्रिया है जिसके कारण वनस्पति एवं अन्य वन्य जीवों की हानि होती है। रेगिस्तानीकरण के फलस्वरूप आद्र भूमि या किसी अन्य प्रकार की भूमि में जल की अत्यधिक कमी हो जाती है फलस्वरूप वह भूमि रेगिस्तान में बदल जाती है। अतिचारण दुनिया भर में मरुस्थलीकरण का मुख्य कारण है। अन्य कारक जो मरुस्थलीकरण का कारण बनते हैं उनमें शहरीकरण और अन्य प्रकार के भूमि विकास, जलवायु परिवर्तन, भूजल के स्तर में कमी, वनों की कटाई, प्राकृतिक आपदाएं और कृषि में गलत जुताई प्रथाएं शामिल हैं जो मिट्टी को हवा के प्रति अधिक संवेदनशील बनाते हैं। रेगिस्तानीकरण शीर्ष मृदा, भूजल भंडार, मिट्टी कटाव, मानव, पशु और पौधों की आबादी को प्रभावित करता है। शुष्क भूमि में पानी की कमी लकड़ी, फसलों, चारा और अन्य पारिस्थितिक तंत्र सेवाओं के उत्पादन को सीमित करती है जो पर्यावरण द्वारा हमें प्रदान की जाती हैं। यूनेस्को के मुताबिक, विश्व की एक तिहाई भूमि की सतह को मरुस्थलीकरण का खतरा है, यह

लाखों लोगों की आजीविका को प्रभावित करती है जो शुष्क भूमि प्रदान करने वाले पारिस्थितिक तंत्र के लाभों पर निर्भर करते हैं।

मरुस्थलीकरण के कई दुष्प्रभाव होते हैं। यदि कोई क्षेत्र रेगिस्तान बन जाता है, तो विशेष तकनीकों के बिना वहां पर्याप्त फसलों को विकसित करना लगभग असंभव है। इन क्षेत्रों में खेतों के बिना, भोजन की कमी हो जाएगी जो भुखमरी को बढ़ावा देंगे। किसी क्षेत्र में पौधे के जीवन के बिना, बाढ़ बहुत अधिक तबाही मचा सकती है क्योंकि पानी को इकट्ठा करने और जगह पर जाने से रोकने के लिए कुछ भी नहीं होता है। यदि कोई क्षेत्र रेगिस्तान बन जाता है, तो पानी की गुणवत्ता अन्यथा होने की तुलना में बहुत खराब हो जाएगी। ऐसा इसलिए है क्योंकि पानी को साफ और साफ रखने में पौधे का जीवन महत्वपूर्ण भूमिका निभाता हैय इसकी उपस्थिति के बिना, ऐसा करने में सक्षम होने के लिए यह बहुत मुश्किल हो जाता है। जब क्षेत्र रेगिस्तान बनने लगते हैं, तो वहां के जानवर और लोग अन्य क्षेत्रों में पलायन करने लगते हैं जिससे किसी एक क्षेत्र की जनसंख्या में अचानक वृद्धि हो सकती है तथा संसाधनों की कमी हो सकती है। मरुस्थलीकरण, संसाधनों की कमी एवं जनसंख्या वृद्धि से गरीबी में वृद्धि हो सकती है।

4.4.6 अम्लीय वर्षा

वायुमंडल में कुछ प्रदूषकों की उपस्थिति के कारण अम्लीय वर्षा होती है। मुख्यतः जीवाश्म ईंधन के दहन के कारण उत्सर्जन से उत्पन्न सल्फर डाइऑक्साइड (SO_2) और नाइट्रोजन ऑक्साइड (NO_x; NO और NO_2 का संयोजन) से अम्लीय वर्षा हो सकती है तथा प्राकृतिक कारणों में ज्वालामुखी या सड़ांध वनस्पति उगने के कारण भी अम्लीय वर्षा हो सकती है जो वायुमंडल में सल्फर डाइऑक्साइड और नाइट्रोजन ऑक्साइड के उत्सर्जन के कारण होती है। ये पदार्थ वायुमंडल में बहुत अधिक ऊचाई तक जा सकते हैं, जहां वे अधिक अम्लीय प्रदूषक बनाने के लिए पानी, ऑक्सीजन और अन्य रसायनों के साथ मिश्रण और प्रतिक्रिया करते हैं।अम्लीय वर्षा एक ज्ञात पर्यावरणीय समस्या है जो मानव स्वास्थ्य, वन्यजीवन, जलीय प्रजातियों और बुनियादी ढांचे पर गंभीर प्रभाव डाल सकती है। अम्लीय वर्षा को अम्लीय जमावट भी कहा जाता है। मुख्य रूप से मानव गतिविधियों के वर्षा के पानी का pH 5.2या उससे नीचे होता है।

जीवाश्म ईंधन के जलने से सल्फर डाइऑक्साइड उत्सर्जित होता है।

S (कोयले में) $+ O_2 \rightarrow SO_2$ ---------- (i)

सल्फर डाइऑक्साइड वायुमंडल तक पहुंचता है, यह पहले सल्फेट आयन बनाने के लिए ऑक्सीकरण करता है।

$2SO_2 + O_2 \rightarrow 2SO_3$ ---------- (ii)

सल्फेट आयन हवा में हाइड्रोजन परमाणुओं के साथ जुड़ता है और सल्फरिक अम्ल बन जाता है। यह फिर पृथ्वी पर वापस अम्लीय वर्षा के रूप में गिर जाता है।

$SO_3 + H_2O \rightarrow H_2SO_4$(अम्लीय वर्षा) ---------- (iii)

इसी प्रकार नाइट्रिक अम्ल का भी गठन होता है जो पुनः अम्लीय वर्षा के रूप में पृथ्वी पर गिरती है।

$N_2 + O_2 \rightarrow 2NO$ ---------- (i)

$2NO + O_2 \rightarrow 2NO_2$ ---------- (ii)

$3NO_2 + H_2O \rightarrow NO + 2HNO_3$(अम्लीय वर्षा) ---------- (iii)

अम्लीय वर्षा में उपस्थित अम्ल अम्लीय जमावट का कारण बन सतह के पानी के pH को घटा देता है जो मृदा और पानी में मौजूद जैव विविधता को कम कर सकती है। यह पेड़ों को कमजोर करती है और सूखे, अत्यधिक ठंड और कीट जैसे अन्य तनाव से क्षति पहुंचाने की उनकी क्षमता को भी घटा देती है। अम्लीय वर्षा वाले संवेदनशील क्षेत्रों में, अम्लीय वर्षा पौंधों के महत्वपूर्ण पोषक तत्वों जैसे कैल्शियम और मैग्नीशियम को भी कम कर देती है। अम्लीय वर्षा पौधों के विकास के लिए आवश्यक पोषक तत्वों को धो देती है। इस प्रकार, अम्लीय वर्षा पौधों को भारी नुकसान पहुंचाती है। यह मनुष्यों में श्वसन संबंधी विकार भी पैदा करता है। पृथ्वी पर गिरने वाली अम्लीय वर्षा अंततः नदियों और झीलों तक पहुँचती है। नदियों और अन्य निकायों तक पहुंचने के बाद, यह जलीय प्रणाली में पौधे और पशु जीवन को गंभीर नुकसान पहुंचाती है। यह इमारतों और संरचनाओं को जो खासतौर पर धातु, चूना पत्थर या संगमरमर से बने होते हैं उनको अत्यधिक प्रभावित करती है। इसका एक जीवंत उदाहरण भारत में ताजमहल है जो अम्लीय वर्षा से गंभीर रूप से प्रभावित हुआ है।

मथुरा के तेल शोधन कारखाने और ताजमहल के आस–पास बड़ी संख्या में उद्योगों के कारण आगरा का वायु प्रदूषण स्तर गंभीर स्तर पर पहुँच गया है। हवा में सल्फर और नाइट्रोजन ऑक्साइड की गंभीर मात्रा उपलब्ध है, जिसके कारण आगरा में अम्लीय वर्षा होती है। जब यह अम्लीय वर्षा ताजमहल पर गिरती है, जो कि संगमरमर (कैल्शियम कार्बोनेट) का बना है, तो अभिक्रिया के कारण ताजमहल का सफेद रंग पीले रंग में बदल रहा है।

$$CaCO_3(\text{सफेद रंग}) + H_2SO_4 \rightarrow CaSO_4(\text{पीला रंग}) + H_2O + CO_2$$

अम्लीय वर्षा में कई पारिस्थितिकीय प्रभाव होते हैं, लेकिन झीलों, धाराओं, आर्द्रभूमि, और अन्य जलीय वातावरण पर इसका सबसे अधिक प्रभाव पड़ता है। अम्लीय वर्षा पानी को अम्लीय बनाती है, और उन्हें एल्यूमीनियम को अवशोषित करने का कारण बनती है जो मिट्टी से झीलों और धाराओं में अपना रास्ता बनाती है। इस प्रकार अम्लीय वर्षा पर्यावरण के लिए एक गंभीर खतरा है।

4.4.7 प्रदूषण और प्राकृतिक संसाधन की कमी

जानबूझकर या अनजाने में प्राकृतिक संसाधनों को प्रदूषित करना या बर्बाद करना मनुष्य के लिए घातक सिद्ध होता जा रहा है। परिवहन, बिजली, औद्योगिक और निर्माण कार्य प्रदूषण के कुछ मुख्य कारण हैं। उद्योग और मोटर वाहन वायु प्रदूषण के शीर्ष प्रदूषक हैं। भारी धातु, नाइट्रेट्स और प्लास्टिक विषाक्त पदार्थ पर्यावरणीय प्रदूषण के लिए जिम्मेदार हैं। जबकि जल प्रदूषण तेल रिसाव, अम्लीय वर्षा, शहरी अपवाह के कारण होता हैय वायु प्रदूषण उद्योग और कारखानों द्वारा जारी विभिन्न गैसों और विषाक्त पदार्थों और जीवाश्म ईंधन के दहन के कारण होता हैय मृदा प्रदूषण मुख्य रूप से औद्योगिक अपशिष्ट के कारण होता है जो आवश्यक पोषक तत्वों से मिट्टी को वंचित करता है।

प्राकृतिक संसाधनों में पौधों, जानवरों, पानी, खनिजों, वायु और जीवाश्म ईंधन जैसे कि कोयले और पेट्रोलियम शामिल हैं। प्राकृतिक संसाधन की कमी एक और महत्वपूर्ण वर्तमान पर्यावरणीय समस्या है। जीवाश्म ईंधन की खपत ग्रीनहाउस गैसों के उत्सर्जन में परिणाम देती है, जो वैश्विक ऊष्मीकरण (ग्लोबल वार्मिंग) और जलवायु परिवर्तन के लिए जिम्मेदार है। वैश्विक स्तर पर, लोग सौर, पवन, बायोगैस और भू–तापीय ऊर्जा जैसी ऊर्जा के नवीकरणीय स्रोतों में स्थानांतरित करने के प्रयास कर रहे हैं। बुनियादी ढांचे को स्थापित करने और इन स्रोतों को बनाए रखने की लागत में हाल के वर्षों में गिरावट भी देखने को मिली है। गैर नवीकरणीय संसाधन जैसे जीवाश्म ईंधन अपरिवर्तनीय और समाप्त हो जाने वाले संसाधन हैं और इस प्रकार उन्हें बनाए रखने के लिए प्रयास किए जाने चाहिए ताकि उनकी आपूर्ति भविष्य की पीढ़ियों के लिए उपलब्ध हो। प्राकृतिक संसाधनों के प्रदूषण ने पर्यावरण के

प्रदूषण को जन्म दिया है। जहरीले अपशिष्ट, रासायनिक उर्वरक और कीटनाशकों के कारण मिट्टी प्रभावित होती है। भले ही हमारे ग्रह के तीन चौथाई से अधिक पानी हो, आज भी पूरे विश्व में स्वच्छ, पीने के पानी की कमी है। हवा, पानी और मिट्टी के प्रदूषण को फिर से भरने के लिए लाखों साल की आवश्यकता होती है।

पर्यावरण प्रदूषण आज हमारे ग्रह पर मानवता और अन्य जीवन रूपों का सामना करने वाली सबसे गंभीर समस्याओं में से एक है। प्रदूषक जीवित प्राणियों के जीवन में भी हस्तक्षेप करते हैं और सभी प्रकार के आवासों को नष्ट करते हैं। प्रदूषण को गंभीरता से लिया जाना चाहिए, क्योंकि इसका प्राकृतिक तत्वों पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है जो पृथ्वी पर जीवन के लिए एक पूर्ण आवश्यकता है, जैसे पानी और हवा। जंगलों और नदियों, धाराओं और अन्य जल निकायों की अशुद्धता के कारण हर साल लुप्तप्राय प्रजातियों की संख्या में वृद्धि हो रही है। जैव विविधता और पारिस्थितिक तंत्र इस से काफी प्रभावित हैं। हम सीधे प्रभावित हो सकते हैं क्योंकि मनुष्यों को खाद्य श्रृंखला के शीर्ष पर रखा जाता है। प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण की मौलिक समस्या को सौर ऊर्जा, पवन ऊर्जा, जल ऊर्जा और भू–तापीय ऊर्जा जैसे अक्षय संसाधनों के उपयोग से हल किया जाना चाहिए।

4.4.8 खतरनाक अपशिष्टों का खराब प्रबंधन

खतरनाक अपशिष्ट वे अपशिष्ट हैं जिसमें सार्वजनिक स्वास्थ्य या पर्यावरण के लिए पर्याप्त या संभावित खतरे हैं। खतरनाक अपशिष्ट ऐसी सामग्रियां हैं जिन्हें संवेदनशीलता, प्रतिक्रियाशीलता, संक्षारण और विषाक्तता जैसे खतरनाक लक्षणों में से एक या अधिक प्रदर्शित करने के लिए जाना जाता है या परीक्षण किया जाता है। खतरनाक अपशिष्ट विभिन्न भौतिक अवस्था जैसे गैसीय, तरल पदार्थ, या ठोस में पाए जा सकते हैं। एक खतरनाक अपशिष्ट एक विशेष प्रकार का अपशिष्ट है क्योंकि इसे हमारे दैनिक जीवन के अन्य उप–उत्पादों जैसे सामान्य माध्यमों से निपटाना नहीं जा सकता है। अपशिष्ट की शारीरिक स्थिति के आधार पर, उपचार और ठोसकरण प्रक्रियाओं की आवश्यकता हो सकती है।

घरों में भी हम अनेक प्रकार के खतरनाक अपशिष्टों का प्रयोग करते है जैसे पेंट्स और सॉल्वैंट्स, मोटर वाहन कचरा (एंटीफ्रीज), इलेक्ट्रॉनिक्स (कंप्यूटर, टीवी, सेल फोन), कीटनाशक, सफाई हेतु विभिन्न रसायन या सफाई एजेंट (अम्ल, डिटर्जेंट आदि), रेफ्रिजरेंट युक्त उपकरण, कुछ विशेषता बैटरी (जैसे लिथियम, निकल कैडमियम, या बटन सेल बैटरी), पारा युक्त उपकरण (थर्मामीटर, स्विच, फ्लोरोसेंट बल्ब, आदि), एरोसोल / प्रोपेन सिलेंडर आदि।

संसाधनों और प्लास्टिक के निर्माण की अधिक खपत अपशिष्ट निपटान का वैश्विक संकट पैदा कर रही है। विकसित देश अत्यधिक मात्रा में कचरे या कचरे के उत्पादन के लिए कुख्यात हैं और महासागरों

और कम विकसित देशों में अपने अपशिष्ट को ढेर लगा रहे हैं। परमाणु अपशिष्ट निपटान के साथ जुड़े भारी स्वास्थ्य खतरे हैं। प्लास्टिक, फास्ट फूड, पैकेजिंग और सस्ते इलेक्ट्रॉनिक कचरे इंसानों के कल्याण को धमकी देते हैं। अपशिष्ट निपटान तत्काल वर्तमान पर्यावरणीय समस्या में से एक है।

ऐतिहासिक रूप से, कुछ खतरनाक कचरे को नियमित भ–ूभरण क्षेत्रों में निपटाया जाता था। इसके परिणामस्वरूप जमीन में उपलब्ध प्राकृतिक संसाधनों पर इसका प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। ये रसायन अंततः प्राकृतिक भू–जल प्रणाली में प्रवेश करते हैं और पानी के माध्यम से हमारे शरीर में प्रवेश करते हैं एवं अनेक विकार उत्पन्न करते हैं।इसके अतिरिक्त ये भू–भरण क्षेत्र पर्यावरण को प्रदूषित करते हैं और शहर की सुंदरता को भी नष्ट करते हैं। घरों, उद्योगों, कारखानों और अस्पतालों द्वारा उत्पन्न होने वाली बड़ी मात्रा में अपशिष्ट के कारण ये क्षेत्र कई बार शहर के भीतर तक आ जाते हैं और पर्यावरण के स्वास्थ्य और वहां रहने वाले लोगों के लिए एक बड़ा जोखिम पैदा करते है। ये भू–भरण क्षेत्र कचरा जलाते समय गंध पैदा करते हैं और भारी पर्यावरणीय गिरावट का कारण बनते हैं।

4.5 चुनौतियाँ एवं समाधान

उपर्युक्त पर्यावरणीय मुद्दों के कारण, हमारे ग्रह को गंभीर पर्यावरणीय संकट का सामना करना पड़ रहा है। ऐसी वैश्विक पर्यावरणीय समस्याओं को हल करने में आने वाली मुश्किलों के तीन व्यापक कारण हैं:

(1) पर्यावरणीय समस्याओं का विज्ञान जटिल है। हम कई पारस्परिक गतिशील प्रणालियों से निपट रहे हैं, जिनके भीतर तथा आपस में कई प्रतिक्रियात्मक तंत्र होते हैं।

(2) पर्यावरणीय समस्याओं के दोनों कारणों और समाधानों में शामिल कई हितधारक हैं। इन सभी हितधारकों को समन्वयित तरीके से कार्य करने के लिए व्यवस्थित करना मुश्किल है।

(3) वैश्विक पर्यावरणीय मुद्दों को हल करने के लिए हमारी अपनी खपत और प्राकृतिक संसाधनों के प्रदूषण करने वाली प्रणालियों और आदतों में बदलाव की आवश्यकता होगी, जिसका अर्थ जीवन शैली में परिवर्तन होगा। इसके लिए व्यक्तिगत स्तर पर प्रतिबद्धता की आवश्यकता होगी, जो हर कोई बनाने के लिए तैयार नहीं है।

वैश्विक पर्यावरणीय मुद्दे को हल करने के कई तरीके हैं। सबसे पहले, हमें अपनी सोच के तरीके और रहन सहन के तरीकों को बदलने की जरूरत है। इसका मतलब है कि हमें अपने जीवन शैली को बदलने की जरूरत है और हमारे पर्यावरण के बारे में अलग तरीके से सोचने की आवस्यकता हैं। अगर पकृति को संरक्षित करना है तो हमें सबसे पहले अपने आस पड़ोस को बदलना होगा। हमें स्वच्छ और अक्षय ऊर्जा स्रोतों को प्रोत्साहन देना चाहिए एवं उनपर अपनी ऊर्जा की अवस्यक्ताओं की पूर्ती के

लिए ज्यादा निर्भर रहना पड़ेगा, शून्य अपशिष्ट जीवन जीना सीखना होगा, जीवाश्म ईंधनों का कम से कम उपयोग करना चाहिए, पर्यावरण अनुकूल उत्पादों का उत्पादन एवं प्रोत्साहन भी आवश्यक है तथा अन्य सतत विकास के उपायों को अपनाना पड़ेगा, तभी हम इन प्राकृतिक चुनौतियों का सामना कर सकते हैं। इसके अतिरिक्त पर्यावरण सम्बन्धी कानूनों का सख्ती से पालन करने की आवश्यकता है तथा पर्यावरण को नुक्सान पहुंचने वाले उत्पादों पर रोक लगाने जरुरी है।

4.6 सारांश

पर्यावरणीय परिवर्तन एक निरंतर चलने वाली प्राकृतिक गतिशील प्रक्रिया है। लेकिन गर्म होती पृथ्वी एवं वर्तमान गति जिस पर यह हो रहा है, अभूतपूर्व है। 1980 के दशक से वैश्विक पर्यावरण परिवर्तन के कई आकलन किए गए हैं। उन आकलनों ने वैश्विक पर्यावरण की स्थिति और मानव गतिविधियों के प्रभावों की लगातार नकारात्मक तस्वीर पेश की है। बढ़ती मांगों को देखते हुए पर्यावरण पर दबाव बढ़ना निश्चित है। वैश्विक आबादी में वृद्धि, बढ़ती आय, और कृषि और औद्योगिक विस्तार अनिवार्य रूप से अप्रत्याशित और संभावित रूप से हानिकारक पारिस्थितिक, आर्थिक और मानव स्वास्थ्य परिणामों को जन्म देंगे। निश्चित ही जलवायु परिवर्तन का मुकाबला करने के लिए जीवाश्म ईंधन से दूरी बढ़ाना महत्वपूर्ण एवं आवश्यक है। हालांकि, यह माना जाना चाहिए कि ऊर्जा की मांग में वृद्धि के कारण जीवाश्म ईंधन के प्रभावों के बावजूद वैकल्पिक ऊर्जा स्रोतों की खोज की आवश्यकता होगी और तथ्य यह है कि जीवाश्म ईंधन की वैश्विक आपूर्ति कम हो रही है। ईंधन की बढ़ती मांग के कारण, यह उम्मीद की जाती है कि हम शेष आपूर्ति को और अधिक तेजी से उपयोग करेंगे। परिणामस्वरूप पर्यावरण को और अधिक हानि होगी तथा हमें और अधिक पर्यावरणीय मुद्दों का सामना करना पड़ सकता है।इसके अतिरिक्त, यह तर्क कि कोयला आधारित उद्योगों को बंद करने से बेरोजगारी बढ़ेगी पूरी तरह से सच नहीं है क्योंकि देश सौर, वायु और अन्य वैकल्पिक ऊर्जा उद्योगों में बदलते हैं तो कई और नई नौकरियां उपलब्ध होंगी। हमें पर्यावरण के साथ – साथ जैव विविधता को भी बचाहए रखना पड़ेगा। मनुष्य की गतिविधियों के कारण वन्य जीवों के आवास स्थानों की हानि और विखंडन, प्रदूषण, जैव संसाधनों का आवश्यकताओं से अधिक उपयोग, विदेशी प्रजातियों की नए क्षेत्रों में घुसपैठ और अन्य पर्यावरणीय गिरावट कारक जैव विविधता हानि के कारण हैं। हमें इन समस्याओं का जल्द से जल्द निदान करना पड़ेगा।

हम सभी पर्यावरण में बढ़ती गिरावट के लिए जिम्मेदार हैं। मानव गतिविधियों में वृद्धि, शहरीकरण, औद्योगिकीकरण से पर्यावरण में तेजी से गिरावट आई है। इसने जीवन समर्थन प्रणाली को गंभीर रूप से प्रभावित किया है। वर्तमान पर्यावरणीय समस्याएं अब आपदाओं और त्रासदियों का कारण बनने लगी

हैं, भविष्य में ये समस्याएं मानव विनाश का कारण बन सकती हैं। पर्यावरणीय समस्याओं की वैश्विक चिंताओं ने पर्यावरणीय मुद्दों पर अंतर्राष्ट्रीय वार्ता की आवश्यकता को तेज कर दिया है। इन मुद्दों को दूर करने के लिए उचित कानूनों को तैयार करने के लिए जिम्मेदार अधिकारियों और राष्ट्रों को तत्काल ध्यान देने की आवश्यकता है तथा लोगों को प्राकृतिक संसाधनों का सतत उपयोग करने के बारे में जागरूक करने की आवश्यकता है।अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर उपायों के अलावा घरेलू उपायों पर अधिक सहयोग की आवश्यकता है। पिछले कुछ वर्षों में, पर्यावरणीय समस्याओं के खतरे की जांच के लिए कई कदम उठाए भी गए हैं।भारत में भी पर्यावरण की सुरक्षा हेतु पर्यावरण संरक्षण अधिनियम बनाया गया, जिसे 26 मई 1986 को भारतीय संसद द्वारा अधिनियमित किया गया था। यह अधिनियम जून 1972 में स्टॉकहोम में आयोजित मानव पर्यावरण पर संयुक्त राष्ट्र सम्मेलन में किए गए निर्णयों के अनुसार पर्यावरणीय संसाधनों की सुरक्षा और सुधार हेतु उपाय प्रदान करता है।

4.7अभ्यास प्रश्न

I. बहुविकल्पी प्रश्न

1. ओजोन परत की मोटाई को मापने की इकाई है

(अ) मिलीमीटर

(आ) डॉब्सन

(इ) डेसीबल

(ई) सेंटीमीटर

2. पानी के ब्लूम का गठन किसके द्वारा किया जाता है?

(अ) लेमना
(आ) हाइड्रिल्ला
(इ) शैवाल
(ई) मछली

3. अम्लीय वर्षा प्रभवित नहीं करेगी
(अ) स्थलमंडल को
(आ) ओजोन परत को
(इ) पौंधों को
(ई) जानवरों को

4. कार्बन डाइऑक्साइड के कारण वायुमंडलीय तापमान में वृद्धि का कारण है
(अ) पास्चर प्रभाव
(आ) ब्लैकमैन प्रभाव
(इ) एमर्सन प्रभाव
(ई) हरितगृह प्रभाव

5. ओजोन दिवस मनाया जाता है

(अ) 16 सितंबर
(आ) 26 मार्च
(इ) 10 नवंबर
(ई) 03 जनवरी

उत्तर कुंजी:1.(आ),2.(इ),3.(आ),4.(ई),5.(अ)

II.लघु उत्तरीय प्रश्न

1. सुपोषण क्या हैं?

2. आवास विखंडनसे आप क्या समझते हैं?

3.उन प्रतिक्रियाओं का उल्लेख करें जिनके कारण अम्लीय वर्षा होती है।

4.आज पूरे विश्व के लिए जनसंख्या विस्फोट एक मुख्य समस्या क्यों है?

5.खतरनाक अपशिष्टों का खराब प्रबंधन एक वैश्विक समस्या क्यों है?

III. निबंधात्मक प्रश्न

1. हरितगृह प्रभाव क्या है और यह भूमंडलीय ऊष्मीकरण का कारण कैसे बनता है?

2. जैव विविधता के नुकसान के मुख्य कारणों की विवेचना कीजिये।

3. पृथ्वी के जीवों हेतु ओजोन परत के महत्त्व पर प्रकाश डालिये एवंओजोन अवक्षय के लिए उत्तरदायी मुख्य गैसों एवं उनके स्रोतों का विवरण दें।

4. वैश्विक पर्यावरणीय मुद्दों पर एक निबंध लिखिए।

सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. Kevin T.PickeringandLewis A.Owen (1997). *An Introduction to Global Environmental Issues*(Second Edition), Routledge, 11 New Fetter Lane, London.

2. Yael Calhoun (2005). *Environmental Issues: Climate Change*, Foreword by David Seideman, Editor-in-Chief, Audubon Magazine, Chelsea House Publisher, Philadelphia, United States of America.

3.Paul K. Conkin (2007). The state of the earth: Environmental challenges on the road to 2100, University Press of Kentucky, 663, South Limestone Streat, Lexington, Kentucky, United States of America.

इकाई -5
पर्यावरण एवं विकासः सततता के विभिन्न दृष्टिकोणों का प्रारूप
Environment and Development: Mapping of Different Approaches of Sustainability

5.0: उद्देश्य
5.1: परिचय
5.2: सतत विकास के दृष्टिकोणों का प्रारूपीकरण
5.3: सतत पर्वतीय विकास
5.4: निष्कर्षः सतत विकास के सन्दर्भ में
5.5: सन्दर्भ

5.0: उद्देश्य (Objective)

इस इकाई के अध्ययन से हम विकास के विभिन्न दृष्टिकोणों और पर्यावरणीय सततता के महत्व को समझ पायेंगे।

5.1: परिचय (Introduction)

बीते कुछ दशकों में विश्वभर में सतत विकास शब्द को विस्तृत स्वीकार्यता मिली है। इस अभिरुचि और रुझान ने विश्वभर में विकास के नये आयामों को विकसित करने में मदद की है, जिसमें प्रकृति, मानवता और लोगों के परस्पर संबंधों को अधिक महत्व दिया जाने लगा है। यह नया स्वरूप बीती सदियों में पर्यावरण को मानवता से इतर माने जाने की धारणा के विपरीत है, जिसमें प्रकृति को मात्र उपभोग और अंधाधुंध दोहन का जरिया समझा जाता था। पर्यावरणीय चिंताएं संरक्षित क्षेत्रों के विकास तक सीमित थीं, क्योंकि इसे स्थानीय समस्या ही माना जाता था। मानव और पर्यावरण के रिश्तों के परिप्रेक्ष्य में प्राकृतिक संसाधनों का दोहन अधिकार मान लिया गया। यह विचार सिर्फ इस दृष्टिकोण पर आधारित था कि मनुष्य द्वारा विकसित ज्ञान एवं तकनीक प्राकृतिक एवं पर्यावरणीय समेत हर तरह की बाधा से पार पा सकते हैं (Dryzek, 1997)। यह सोच दरअसल, पूंजीवादी व्यवस्था, औद्योगिक क्रांति और आधुनिक तकनीक से जुड़ी हुयी थी। इतना ही नहीं, तत्कालीन वैज्ञानिक (जिनमें से अधिकतर आधुनिक विज्ञान के संस्थापक माने जाते हैं), ने भी इन परिस्थितियों को इस तरह वर्णित किया, 'दुनिया मानव के लिये बनायी गयी है, मानव दुनिया के लिये नहीं बनाया गया है।'

अर्थव्यवस्था, आर्थिक विकास के साथ मानवीय संबंधों, बढ़ते उत्पादन के कारण प्रभुत्वसंपन्न होती गयी और मानवीय जीवन की सबसे प्रमुख प्राथमिकता बन गयी (Douthwaite, 1992) और इसके चलते संसाधनों का दोहन निरंतर बढ़ता चला गया। अर्थव्यवस्था को ही मानव जीवन का सबसे अहम अंग माना गया। माना जाता था कि आर्थिक विकास के जरिये ही निर्धनता की समस्या का निपटारा संभव है।

हालांकि, बाद में पर्यावरणीय प्रबंधन की चिंताएं विभिन्न व्यवसायों, उद्यमों और सरकारों के लिये भी चिंतन का विषय बनीं, इसके चलते पर्यावरणीय समस्याओं को स्थानीय समस्याएं समझने के बजाय वैश्विक प्राकृतिक संसाधन प्रबंधन की दिशा तय हुयी (Hopwood et al. 2005)। यह अवधारणा प्राकृतिक संसाधनों के अंधाधुंध, अनियोजित दोहन के बजाय मानवजीवन में इनके महत्व की पहचान और इनके प्रबंधन, संरक्षण की जरूरत पर जोर देती है। प्राकृतिक संसाधनों के सतत विकास का विचार भी इसी जागरूकता का परिणाम है, जिसमें सामाजिक–आर्थिक समस्याएं, निर्धनता, असमानता, पर्यावरणीय दिक्कतों जैसे बिन्दु जुड़ते हैं। यह अवधारणा मानवता के स्वस्थ भविष्य के लिहाज से पर्यावरण एवं सामाजिक–आर्थिक मुद्दों पर ध्यान केन्द्रित करती है।

5.1.1: हमारा साझा भविष्यः ब्रटलैंड रिपोर्ट (Our Common Future: The Brudtland Report)

सतत विकास शब्द का इस्तेमाल सबसे पहले वर्ष 1980 में वैश्विक संरक्षण नीति में किया गया था (IUCN et al., 1980)। लेकिन, पर्यावरणीय एवं सामाजिक–आर्थिक मुद्दों को एक साथ रखकर देखने का विचार सबसे पहले पर्यावरण एवं विकास वैश्विक आयोग (WCED) की ओर से पेश ब्रटलैंड रिपोर्ट (Brundtland Report: Our Common Future, 1987) में दिया गया। इस रिपोर्ट में सतत विकास को इस तरह परिभाषित किया गया, 'वर्तमान की जरूरतों को इस तरह पूरा करना कि भावी पीढ़ियों को उनकी जरूरतों की पूर्ति के लिये कमी न रहे।' ब्रटलैंड रिपोर्ट में मानव का अपनी जरूरतों के लिये पर्यावरण पर निर्भर होने और संसाधनों के दोहन को परिभाषित किया गया है, 'पारिस्थितिकी एवं अर्थव्यस्था स्थानीय, क्षेत्रीय, राष्ट्रीय और वैश्विक स्तर पर परस्पर गहराई से जुड़े हुये होते हैं।' (WCED, 1987).

ब्रटलैंड रिपोर्ट के अनुसार औद्योगिक क्षेत्र हो या ग्रामीण, मानवता और समाज सुरक्षा, मूल अस्तित्व के लिये पर्यावरण पर निर्भर होते हैं। इतना ही नहीं, हमारे वर्तमान की आर्थिक क्षमताएं और भविष्य की जरूरतें भी पर्यावरण पर ही निर्भर हैं। इसके अनुसार, 'पर्यावरणीय समस्याएं स्थानीय नहीं, बल्कि वैश्विक हैं। ऐसे में इन समस्याओं के एक से दूसरे स्थान तक पहुंचने से रोकने के लिये अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर प्रभावी कार्य और नीतियां तैयार करने की जरूरत है।' इन कदमों में उद्योगों से होने वाले प्रदूषण पर नियंत्रण, धरती से मिलने वाले संसाधनों का समुचित दोहन आवश्यक है (Wackernagel and Rees, 1996)। इस रिपोर्ट में स्पष्ट किया गया कि पर्यावरणीय समस्याएं मनुष्यों के स्वास्थ्य, जीवनस्तर, आजीविका पर बुरा असर डालते हैं और यह भावी पीढ़ियों के मध्य युद्ध जैसी परिस्थितियों की आशंका को भी बढ़ा सकते हैं।

सतत विकास मौजूदा आर्थिक नीतियों पर भी सवाल खड़े करता है, जिनमें दावा किया जाता है कि मानव समुदाय का विकास और समृद्धि वैश्विक व्यापार और औद्योगीकरण से ही संभव है (Sachs, 1999)। खास बात यह है कि पुराने विकास मॉडल गरीबी उन्मूलन में वैश्विक तौर पर विफल रहे हैं और इनकी वजह से अमीर–गरीब देशों के बीच की खाई को पाटने की दिशा में कोई कामयाबी नहीं मिल सकी है (WCED, 1987)। इतना ही नहीं, विकास की मौजूदा कार्यशैलियों ने उस पर्यावरण को भारी नुकसान पहुंचाया है, जिस पर हम निर्भर करते हैं। इन विफलताओं की पहचान करते हुए रिपोर्ट बताती है, 'विकास की गुणवत्ता, आवश्यक जरूरतों की पूर्ति के लिये निर्णय निर्धारण प्रक्रिया में आर्थिकी और पर्यावरण को एकसाथ मिलाकर चलने की जरूरत है।' इस प्रक्रिया में मानव विकास, लाभ वितरण में समानता और निर्णयों में सहभागिता पर भी जोर दिया जाना जरूरी है। प्रस्तावित विकास प्रक्रिया में सामाजिक न्याय के

लक्ष्यों को पूरा करने का संकल्प होना चाहिये, जिनमें गरीबी उन्मूलन, मानवीय आवश्यकताओं की पूर्ति और सभी वर्गों के बीच संसाधनों के समुचित वितरण आदि शामिल हैं। यह संकल्प ही सतत विकास का सबसे अहम बिन्दु है।

5.1.2: अर्थव्यवस्था, पर्यावरण एवं समाज (Economy, Environment and Society)

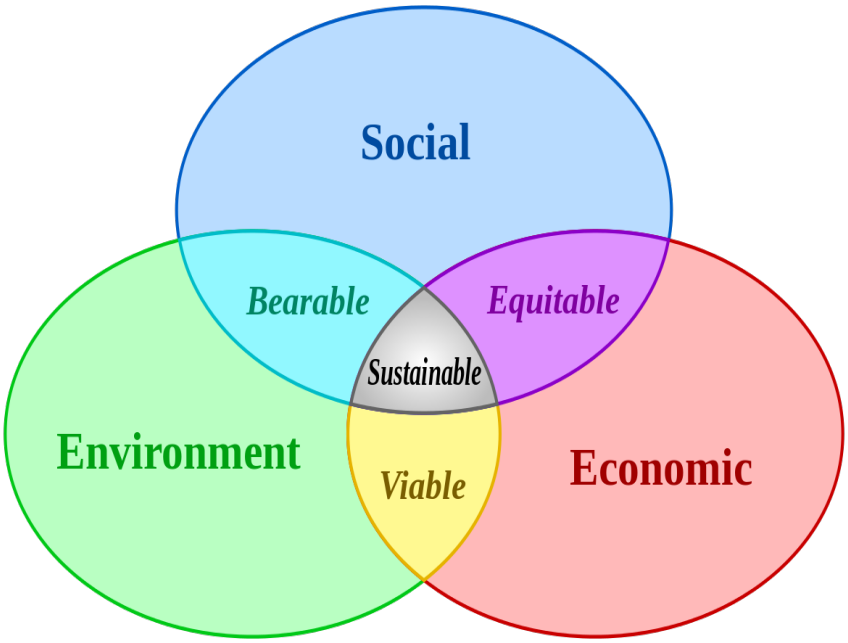

Figure 1: Major sectors of sustainable development

सतत विकास प्रक्रिया को प्रायः अर्थव्यवस्था, पर्यावरण और समाज में बांटकर देखा जाता है (Hardi and Zdan, 1997)। थ्री सेक्टर मॉडल में तीन अंतर्संबंधित चक्रों को दिखाया जाता है (Barton, 2000. Figure 1)। सतत विकास के असर को तीन सुविधाजनक श्रेणियों में वर्गीकृत करना विश्लेषण को सुविधाजनक बनाता है। मॉडल में समान आकार के तीन चक्रों को सममित अंतर्संबंध में दिखाया जाता है, हालांकि इसका कोई विशेष कारण नहीं है। यदि उन्हें अलग–अलग करके देखा जाये तो विभिन्न परिप्रेक्ष्य सामने आते हैं। इस मॉडल में अहम सीमाएं हैं, क्योंकि यह मॉडल अर्थव्यवस्था, समाज और पर्यावरण को अलग–अलग तथा स्वायत्त रूप में देखता है। यह दृष्टिकोण सतत विकास को बंटे हुये तरीके को सामने लाता है। यह विभक्तीकरण अर्थव्यवस्था, पर्यावरण और समाज के बुनियादी संबंधों को पूरी तरह उभार नहीं पाता। यह मॉडल बताता है कि तीनों सेक्टर के बीच अदला–बदली संभव है।

5.1.3: सतत विकास के सिद्धांत (Principles of Sustainable Development)

हॉटन (1999) ने समानता पर आधारित सतत विकास के पांच सिद्धांतों का विचार दिया है:

अंतर्पीढ़ीगत समानता (Intergenerational Equity): विकास भविष्य पर निर्भर करता है। वर्तमान की जरूरतों की पूर्ति में इस बिन्दु की अवहेलना नहीं की जा सकती है कि भविष्य की पीढ़ियों के अपनी जरूरतें पूर्ण करने की क्षमता बनी रहे और उनके लिये कमी न हो।

पीढ़ियों के अंदर समानता (Intra-generational Equity): असमानता और अन्याय के कारणों की तलाश में सामाजिक न्याय के तरीकों को लागू किया जाना, जिससे पुनर्वितरण मानकों पर ध्यान केन्द्रित किया जा सके।

भौगोलिक समानता (Geographical Equity): स्थानीय नीतियों को लेकर बाहर से उठायी जाने वाली जिम्मेदारी, जो वैश्विक और स्थानीय दोनों तरह के मसलों को हल कर सके।

प्रक्रियात्मक समानता (Proceduralal Equity): लोगों के साथ निष्पक्ष व्यवहार हो। इसका कार्यक्षेत्र स्थानीय स्तर तक ही सीमित नहीं हो सकता, क्योंकि प्रक्रिया को पूर्ण करने वाले कारक स्थानीय के साथ वैश्विक भी हो सकते हैं।

अंतरप्रजातीय समानता (Inter-species Equity): जैवविविधता सबसे महत्वपूर्ण है। ऐसे में मनुष्यों के अस्तित्व की तरह ही अन्य प्रजातियों के अस्तित्व का महत्व भी समान है।

सतत विकास के सिद्धांत को मानवीय संबंधों के संदर्भ में भावी पीढ़ियों की जरूरतों को सम्मान देने के तौर पर परिभाषित किया जा सकता है। यहां समानता का भाव सामाजिक न्याय, जाति–लिंग–वर्ग आदि के भेद से इतर रहकर लोगों की सहभागिता को सुनिश्चित करता है, ताकि वे भविष्य को गढ़ सकें। ये सिद्धांत सतत विकास के विचार को स्पष्ट करने के साथ मानवीय समानता को पर्यावरण से भी संबद्ध करते हैं, जिसमें जैवविविधता और पारिस्थितिकी एकीकरण का ध्यान रखा जाता है।

5.2: सतत विकास का प्रारूप (Mapping Approach of Sustainable Development)

सतत विकास को लेकर कई व्याख्याएं उपयोग में हैं, लेकिन इन सबको बेहतर ढंग से संबद्ध करने के लिये प्रारूप कार्यसिद्धांत (**Mapping Methodology**) की आवश्यकता होती है, जो पर्यावरण और सामाजिक–आर्थिक मुद्दों को संयुक्त करती है। ओ'रियोडन (1989) ने शक्तिशाली पारिस्थितिकी केन्द्रित से लेकर शक्तिशाली तकनीक केन्द्रित पर्यावरणीय विचारों का वर्गीकरण करते हुये पाया कि ये प्रायः सामाजिक–आर्थिक दृष्टिकोण से संबद्ध होते हैं। पारिस्थितिकी केन्द्रित विचार सामाजि–आर्थिक समानता की ओर बढ़ते हैं, तो तकनीक केन्द्रित विचार आर्थिक और राजनीतिक स्थिरता का समर्थन करते हैं। हालांकि, हर मामले में यह संभव नहीं है, 'सततता एवं सामाजिक न्याय हमेशा अनिवार्य रूप से समांतर नहीं चलते हैं' (Marcuse 1998), सततता अन्याय को ढक लेती है, इसी तरह सामाजिक न्याय पर्यावरणीय नुकसान की भरपाई कर देता है (Dobson, 2000). कई मामलों में पर्यावरण और सामाजिक चिंताओं का संबंध नैतिकता पर आधारित होता है (Blowers, 1993) जिसमें दोनों को भौतिक और सामाजिक रूप से देखे जाने के बजाय परस्पर अविभाज्य और संवेदनशील नजर से देखा जाता है। मर्चेंट (1992) और ड्रेजेक (1997) ने भी पर्यावरणीय पहलुओं के विश्लेषण के उपयोगी तरीके बताये हैं। हालांकि, सतत विकास को लेकर विचारों–सिद्धांतों के प्रारूप का काम बेहद सीमित दायरे में हुआ है।

सतत विकास की विविध व्याख्याओं को समान रूप से समझने के लिये ओ'रियोडन के प्रारूप से देखा जा सकता है, जिसमें पर्यावरणीय एवं सामाजिक–आर्थिक विचारों को दो अक्षों में रखा गया है (Figure 2). वाई अक्ष मानवीय समानता के महत्व को दर्शाता है, जबकि एक्स अक्ष पर्यावरणीय प्राथमिकता का परिचायक है। सतत विकास का पहलू इन दोनों के बीच छायादार क्षेत्र में उपस्थित है, जो दोनों अक्षों के बीच उनकी प्रकृति के अनुरूप होने वाले परिवर्तन, रूपांतरण अथवा यथास्थिति को दर्शाता है। इस क्षेत्र के बाहर के विचार या तो आर्थिक–सामाजिक हो सकते हैं अथवा पर्यावरणीय जो एक समय में किसी एक विचार को स्वीकृत करते हैं तो दूसरे को नकारते हैं। तीन महत्वपूर्ण विचार इस प्रारूप में उभरते हैं, जो समाज के राजनीतिक, आर्थिक ढांचे में आने वाले परिवर्तनों और मानव–पर्यावरण संबंधों के

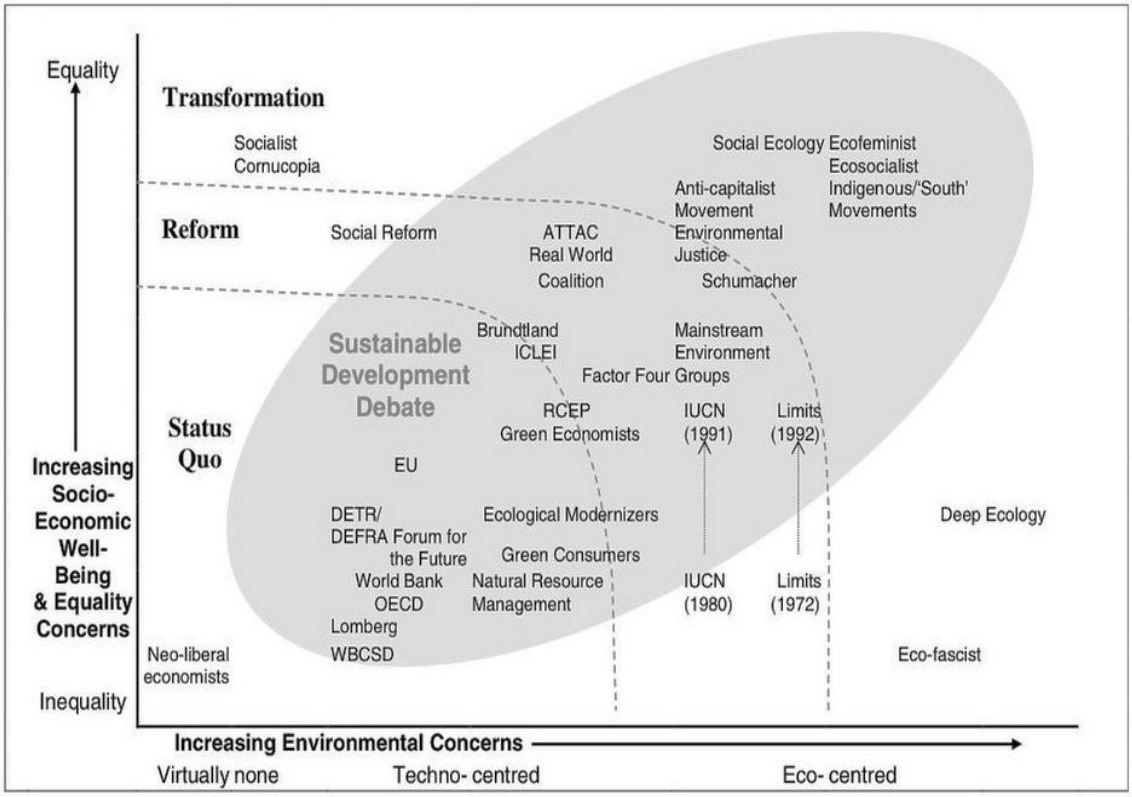

Figure 2: Mapping on views of sustainable development (adapted from Hopwood et al., 2005)Figure 3: Mapping on views of sustainable development (adapted from Hopwood et al., 2005)

जरिये सतत विकास की स्थिति को प्राप्त करने की दिशा में बढ़ते हैं।सतत विकास की बहस अकसर दो बिन्दुओं के इर्द–गिर्द घूमती है, पहला है पर्यावरणीय और दूसरा सामाजिक–आर्थिक मुद्दे। इन मुद्दों के समाधान के लिये पर्यावरणीय, सामाजिक एवं सतत विकास के विभिन्न दृष्टिकोण का उपयोग किया जा सकता है। सतत विकास के दृष्टिकोण से पर्यावरणीय और सामाजिक–आर्थिक परिवर्तनों के मूल कारणों को स्पष्ट किया जा सकता है। परिवर्तन को तीन श्रेणियों में देखा जा सकता हैः यथास्थिति, सुधार और रूपांतरण। बाद की

श्रेणी सर्वाधिक परिवर्तनशील है, जो मौजूदा ढांचे को बाहर से परिवर्तित करते हैं और मानव अस्तित्व तथा प्रकृति के लिये महत्वपूर्ण बनते हैं। सतत विकास के इन विचारों को निम्नवत सरलता से समझा जा सकता है:

यथास्थिति (Status Quo): यथास्थिति के समर्थक (विशेषतः सामाजिक और राजनीतिक मसलों में) परिवर्तन की आवश्यकता को समझते हैं, लेकिन पर्यावरणीय एवं सामाजिक समस्याओं पर ध्यान नहीं देते। यह पक्ष बुनियादी ढांचागत परिवर्तनों के बजाय छोटे–छोटे परिवर्तन करता है, इनमें से अधिकतर राजनीतिक और व्यावसायिक कारक होते हैं, जिनके अनुसार उन्नतिपरक विकास ही समस्याओं का समाधान है। इस स्थिति के समर्थक कर व्यवस्था में प्रगतिशीलता, सामाजिक श्रम में कटौती, निजीकरण और निगरानी को घटाने के लिये सरकार की भूमिका में परिवर्तन के प्रति संवेदनशील होते हैं। उनका तर्क है कि व्यवसाय सततता की ओर बढ़ाने वाला कारक है। बाजार के जरिये सूचनाओं में वृद्धि, बदलते मूल्य, परिष्कृत प्रबंधन तकनीकें और नयी तकनीक सतत विकास को हासिल करने का सबसे महत्वपूर्ण माध्यम हैं।

साइमन और कान (1984) बाजार और तकनीक के मेल को भविष्य में ऐसी दुनिया स्थापित करने में क्षमतावान मानते हैं जो कम प्रदूषित, पारिस्थितिकी रूप से अधिक स्थायी होगी और जहां लोग आज के मुकाबले अधिक समृद्ध होंगे। इस दृष्टिकोण को World Business Council for Sustainable Development (1998) ने भी समर्थन दिया। इसके अनुसार वैश्विक बाजार और पर्यावरणीय स्थायित्व के बीच कोई विरोध नहीं है। इस दृष्टिकोण का तर्क है कि, हम खुले और स्वस्थ व्यापारिक तंत्र के बूते सतत विकास का लक्ष्य हासिल कर सकते हैं।

ऑर्गेनाइजेशन फॉर इकोनॉमिक को–ऑपरेशन एंड डेवलपमेंट (OECD, 2001) का तर्क है कि करों, सब्सिडी में वित्तीय परिवर्तन और संसाधनों पर निजी स्वामित्व की बढ़ोतरी से बाजारों को सतत विकास की दिशा में काम को प्रेरित किया जा सकता है, साथ ही यह विश्वास भी जगाया जा सकता है कि वैश्वीकरण सामाजिक और पर्यावरणीय सुरक्षा व्यवस्था को कमजोर नहीं करने वाला है। लोम्बर्ग (2001) कहते हैं, 'विकासशील विश्व में पर्यावरणीय गुणवत्ता बढ़ाने के लिये सबसे जरूरी है आर्थिक उन्नति की सुनिश्चितता। यही वह जरिया है, जो लोगों को निर्धनता, भूख जैसी समस्याओं से उबारने के साथ पर्यावरणीय दिक्कतों से भी निपट सकता है।'

अधिकतर आधुनिक पारिस्थितिकी विशेषज्ञ यथास्थिति बनाये रखने का समर्थन करते हैं। आधुनिक पारिस्थितिकी के लिये वे बाजार का समर्थन करते हैं, जिसमें निगरानी तंत्र भी शामिल हो। इसके अलावा सरकार, व्यवसाय, पर्यावरणविदों, वैज्ञानिकों के संयोजन में वे तकनीक को समानता, न्याय और मानवीय जीवनस्तर से कहीं अधिक प्रमुखता देते हैं। (Alier, 2003). यह समूह सरकार की भूमिका को कमतर करने का पक्षधर होता है, नियमों व नियंत्रण के पालन के प्रति वे अनिच्छुक रहते हैं, जबकि वृहद विषयों पर लोकतांत्रिक अधिकारों की वृद्धि की भी वे जरूरत नहीं समझते (विशेषतः आर्थिक मामलों से जुड़े निर्णयों में)। यह माना जाता है कि प्रबंधन का मौजूदा सरकारी और व्यावसायिक तंत्र (EIA, EMAS, CBA, BATNEEC, BPEO आदि) और तकनीकी–आर्थिक साधन (पर्यावरणीय कर, प्रदूषण नियंत्रण परमिट आदि) सतत विकास प्रक्रिया को प्रोत्साहित करते हैं। गैरेट हार्डिन (1968) अपनी पुस्तक 'Tragedy of

the commons' में पर्यावरण की सुरक्षा के लिये संसाधनों पर निजी स्वामित्व को बढ़ावा देने की वकालत करते हैं। यही नहीं, उनकी 'Lifeboat ethic' (1974) तर्क देती है कि निर्धनों को भूखा ही छोड़ देना चाहिये। जबरन बलप्रयोग (Coercion, 1968) को उनका समर्थन उनके सामाजिक विचारों को आर्थिक तानाशाही की ओर बढ़ाता है।

यथास्थिति समर्थकों का पर्यावरणीय सततता के प्रति बेहद कमजोर और अन्यमनस्क बर्ताव रहता है। यहां तक कि कुछ के लिये तो इस दृष्टिकोण का कोई महत्व ही नहीं नजर आता है। वे यही मानते हैं कि तकनीक प्रकृति का स्थान ले सकती है और विकास ही निर्धनता, असमानता जैसी समस्याओं से निपटने का एकमात्र तरीका है। विश्व बैंक (2000) का भी मानना है कि वैश्विक निर्धनता को कम करने के लिये आर्थिक स्थिरता, बाजार समर्थित सुधार और विकास को पोषण देना बहुत आवश्यक है।

सुधार (Reform): इस विचार के समर्थक नीतियों और कार्यशैलियों में परिवर्तन की मांग करते हैं। वे सरकार, व्यापार और नीतियों के लिये इन्हें जरूरी मानते हैं, लेकिन बुनियादी परिवर्तन की उम्मीद नहीं रखते। वे मौजूदा समाज की समस्याओं की जड़ों तक नहीं पहुंचते और जानकारी व सूचनाओं का अभाव होने के बावजूद वे विश्वास करते हैं कि सामाजिक चुनौतियों का निस्तारण वे आसानी से कर सकेंगे। वे आमतौर पर यही मानते हैं कि नीतियों और जीवनशैली में बदलाव की जरूरत है और यह मौजूदा सामाजिक–आर्थिक ढांचे में ही हासिल किया जा सकता है। इन समूहों में सरकार और सार्वजनिक संस्थानों का प्रतिनिधित्व तो होता है, लेकिन इन पर शिक्षाविदों और गैर सरकारी संगठनों का ही प्रभुत्व नजर आता है। सुधार के समर्थकों का विश्वास है कि नयी तकनीकें पर्यावरण के संरक्षण में मददगार हो सकती हैं और वे दावा करते हैं कि नयी तकनीकें विस्तृत आर्थिक और सामाजिक लाभ भी प्रदान कर सकते हैं। उदाहरण के लिये, ऊर्जा के उपयोग के लिये कोयले के बजाय नवीकृत संसाधनों का इस्तेमाल करने से ऊर्जा क्षमता में खासी बढ़ोतरी हुयी है, जो व्यावसायिक दृष्टि से लाभकारी तो है ही, पर्यावरण के लिये भी नुकसानदेह नहीं हैं।

इस दृष्टिकोण में सरकार की भूमिका को महत्वपूर्ण माना जाता है, जिसका काम व्यवसायों का नियंत्रण और उन्हें बढ़ावा देना है, जिसके लिये वह कर व्यवस्था में बदलाव, सब्सिडी, शोधकार्य और सूचनाएं प्रदान करने का काम करती है। इसके अलावा राजनीतिक तंत्र में भी सुधार की जरूरत महसूस की जाती है, जिसमें लोकतांत्रिक भाव और सहभागिता की अधिकता हो। The Real World Coalition पर्यावरणीय और सामाजिक–आर्थिक चिंतनों को संयुक्त करता है और बताता है कि मौजूदा व्यापारिक मॉडल अपने आप में बड़े खतरे का स्रोत है, क्योंकि इसकी वजह से सामाजिक असमानता, निर्धनता, पर्यावरणीय नुकसान और वैश्विक अस्थिरता के पहलू उभरकर सामने आने लगे हैं। सुधार के समर्थक मानते हैं कि लोकतांत्रिक पुनर्गठन के लिये आमूल परिवर्तन की आवश्यकता है, ताकि सरकार और समाज पूंजीवाद के सतत, विश्वसीय, उत्तरदायी और समानता समर्थक स्वरूप को उभार सकें। 1960 से 1980 के दौरान पर्यावरणीय चिंतन विकास और अर्थव्यवस्था से जुड़े पहलुओं में बहस का विशेष मुद्दा बन गया। दो ऐतिहासिक दस्तावेज 'Limits to Growth report' (Meadows et al., 1972) और 'World Conservation Strategy' (IUCN–UNEP–WWF, 1980) ने पर्यावरणीय मुद्दों को वैश्विक राजनीतिक परिदृश्य में उभारने में मदद की। सतत विकास को लेकर सामने आने वाले तर्कों ने न सिर्फ पूंजीवादी अर्थव्यवस्था को पर्यावरणीय गुणवत्ता की ओर ध्यान देने की ओर प्रेरित किया, बल्कि यह भी तर्क दिया कि मौजूदा विकास

मॉडल पर्यावरण को नुकसान पहुंचा रहा है। दूसरी ओर, वैश्विक संरक्षण नीतियां मानवीय आवश्यकताओं की पूर्ति पर आधारित थीं। ये सामाजिक–आर्थिक ढांचों या वितरण में बदलाव के बजाय पर्यावरणीय परिवर्तनों की पक्षधर रहीं और इन नीतियों में ही सबसे पहले सतत विकास शब्द का इस्तेमाल किया गया। यद्यपि इन नीतियों में पर्यावरणीय पहलुओं की चिंता उभरी, लेकिन सामाजिक–आर्थिक ढांचे को भी इसमें पर्याप्त स्थान मिला, जिसने निर्णय प्रक्रिया में सहभागिता, मानव जीवन की गुणवत्ता में सुधार और वैश्विक अर्थव्यवस्था में नवीनीकरण पर जोर दिया। हमारा भविष्य विस्तृत स्वरूप में सुधार का पक्षधर है, लेकिन कई मामलों में यह यथास्थिति की ओर झुकता दिखता है।

रूपांतरण (Transformation): यह विचार मानता है कि सामाजिक मुद्दे पर्यावरण से संबद्ध हैं, जो मानव और पर्यावरण के अंतर्संबंधों पर निर्भर करते हैं। संकट और विध्वंस से बचने के लिये आर्थिक तंत्र और शक्ति ढांचे में रूपांतरण की आवश्यकता है, क्योंकि इनमें कई ऐसी समस्याएं अंतर्निहित हैं जो मानव जीवन और पर्यावरणीय सततता से जुड़ती हैं। कई बार राजनीतिक ढांचा और वैज्ञानिक तर्क सामाजिक और राजनीतिक कार्यों की जरूरत महसूस करते हैं, जिनमें शक्ति केन्द्र से बाहर के पारंपरिक समूहों, निर्धन, कामगार वर्ग, महिलाओं को भी शामिल किया जाता है। यह समूह उन लोगों का प्रतिनिधित्व करता है जो या तो पर्यावरण अथवा सामाजिक–आर्थिक या फिर इन दोनों विचार पर प्राथमिकता से केन्द्रित होते हैं। रूपांतरण के भी दो तरीके हैं:

सतत विकास के बिना रूपांतरण (Transformation Without Sustainable Development):इस प्रक्रिया में सामाजिक–आर्थिक अथवा पर्यावरणीय मुद्दों के रूपांतरण की जरूरत महसूस की जाती है। हालांकि, कई बार इसकी सतत विकास से सीधे संबद्धता नहीं होती। उदाहरण के लिये, पारिस्थितिकी के कट्टर समर्थकों के लिये पर्यावरण ही प्राथमिक मुद्दा होता है, जिसके लिये वे प्रकृति और पर्यावरण के स्वाभाविक आंतरिक तत्वों–मूल्यों पर बल देते हैं। आर्न नेस और जॉर्ज सेसन्स (1984) ने गहन पारिस्थितिकी अभियान (Deep Ecology Movement) की अवधारणा दी, जिन्हें 'Eight Points of Deep Ecology' माना जाता है:

- पृथ्वी पर मनुष्यों और गैर मनुष्यों के जीवन की कुशलता और पोषण का विचार उनके भीतर ही आंतरिक मूल्यों, पीढ़ीगत मूल्यों और अनुवांशिक मूल्यों के रूप में स्थित है। ये मूल्य गैर मनुष्य विश्व के मानवीय उद्देश्यों की पूर्ति के लिये उपयोगी हैं।
- जीवन की समृद्धि और विविधता इन मूल्यों के संरक्षण, स्थापना और संवर्द्धन में मदद करती हैं, जिससे मूल्यों में समानता का भाव बना रहता है
- पोषण संबंधी आवश्यकताओं की पूर्ति से इतर मानवों को इस जैवसमृद्धि और जैवविविधता को कम करने का कोई अधिकार नहीं है
- मानव जीवन और संस्कृति का फलना–फूलना कम मानव आबादी के अनुकूल होता है, इसी तरह गैर मानव जीवन के विकास के लिये भी कम मानव आबादी की आवश्यकता होती है
- मौजूदा दौर में गैर मानव विश्व में मानवीय हस्तक्षेप जरूरत से ज्यादा बढ़ गया है और यह स्थिति तेजी से बदतर होती जा रही है

- ऐसी स्थिति में नीतियों में परिवर्तन आवश्यक है, ये नीतियां ही बुनियादी आर्थिक, तकनीकी और वैचारिक ढांचे को प्रभावित करेंगी और इनके जरिये मिलने वाले परिणाम मौजूदा दौर से काफी अलग होंगे
- वैचारिक परिवर्तन का तात्पर्य जीवन की गुणवत्ता के पीढ़ीगत मूल्यों को बनाये रखने से है, न कि जीवनस्तर में भौतिक सुधार से, बड़प्पन (Bigness) और महानता (Greatness) में अंतर समझने के लिये वृहद जागरूकता की जरूरत है
- जो भी उपरोक्त बिंदुओं को लागू करते हैं, प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से आवश्यक परिवर्तन लागू करना उनका कर्तव्य हो जाता है

पारिस्थितिकी विशेषज्ञों की तुलना में सामाजिक विशेषज्ञ सामाजिक और आर्थिक असमानताओं को खत्म करने के लिये सामाजिक परिवर्तनों की जरूरत जताते हैं। यह माना जाता है कि पूंजीवाद से स्वतंत्र मानवीय कौशल सभी समस्याओं से पार पा सकता है।

सतत विकास के साथ रूपांतरण (Transformation With Sustainable Development): वह समूह अथवा लोग जिनका दृष्टिकोण सामाजिक और पर्यावरणीय दोनों तरह के सवालों के जवाब तलाशता है, विचारों की एक विस्तृत श्रृंखला से गुजरते हैं। वे मानते हैं कि समाज और पर्यावरण पर मंडरा रहे संकट परस्पर संबंधित हैं और समय रहते आमूल परिवर्तन नहीं किया गया तो इनके नष्ट होने का खतरा बढ़ जाता है। यह संभव है कि ऐसे कई अभियानों में सतत विकास शब्द का उस तरह इस्तेमाल नहीं किया गया हो, जैसा कि आधिकारिक एवं शैक्षिक वर्गों में किया जाता है, लेकिन इनका उद्देश्य भी यही रहा कि पर्यावरण के भीतर असमानता और निर्धनता से रहित जीवन कैसे जीया जाये। इस दृष्टिकोण का तर्क है कि अधिकतर बुनियादी समस्याएं मौजूदा सामाजिक व्यवस्था में ही अवस्थित हैं, जिसका आधार मानव समूह के बहुत छोटे किन्तु शक्तिशाली लोगों द्वारा पर्यावरणीय संसाधनों का अंधाधुंध दोहन है। इसलिये यह विचार सामाजिक समानता का पक्षधर है, जिसमें जीवनस्तर, बेहतर स्वास्थ्य, संसाधनों, आर्थिक तथा राजनीतिक निर्णयों में सक्रिय सहभागिता के अवसर उपलब्ध हों।

सामाजिक समानता की गैरमौजूदगी में पर्यावरण का नुकसान अपरिहार्य तथा अनिश्चित होता है। उदाहरण के लिये (Figure 3) जीवनस्तर की सुरक्षा यानी सतत उपभोग का लक्ष्य तभी हासिल हो सकता है, जबकि पर्यावरणीय सुरक्षा अर्थात प्राकृतिक उत्पादन और वितरण की व्यवस्था को सतत बनाये रखने की दिशा में निरंतर चिंतन किया जाये।

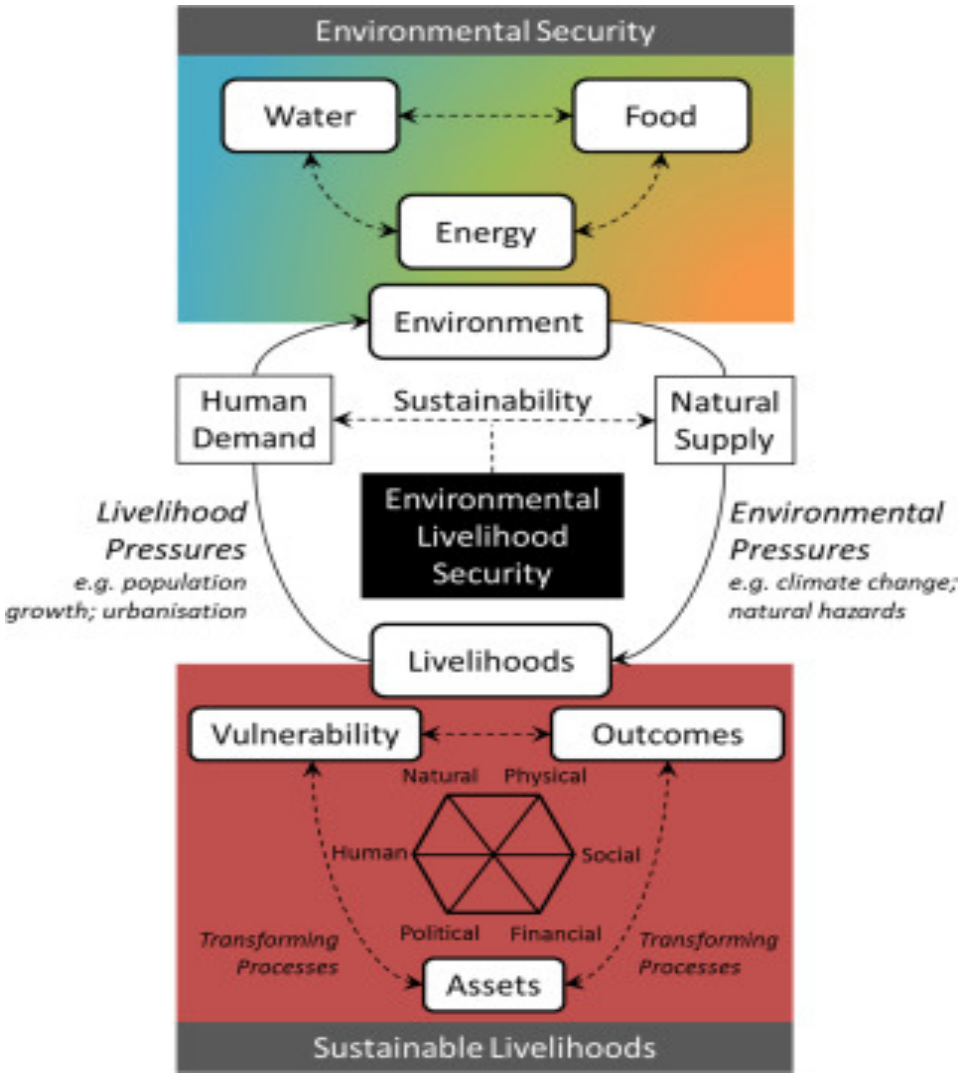

Figure 4: Mapping the livelihood and environmental sustainability

सतत विकास के लिये चले विभिन्न अभियान अलग–अलग तरीके से पर्यावरण, सामाजिक, आर्थिक और वैश्वीकरण विरोधी संघर्ष के अगुवा बने। यथास्थिति के दृष्टिकोण के लिये ये बड़ी चुनौती रहे। सतत विकास के रूपांतरण का दृष्टिकोण विचारों के सतत आदान–प्रदान की प्रक्रिया है, जो कई बार वर्गीकरण को कठिन बना देती है, लेकिन इनके माध्यम से विचार और कार्यशैली दोनों ही समृद्ध होती हैं (Hopwood et al., 2005)। सतत विकास यथार्थ प्रारूप के बजाय विस्तृत अवधारणात्मक ढांचा है। समूहों में इसका वर्गीकरण ही सामान्यीकरण है और इस प्रक्रिया में यह बिन्दु वाद–विवाद का विषय हो सकता है कि किस समूह की सीमा कहां तक है, सीमा स्पष्ट भी है या नहीं। व्यक्ति और समूहों के विचार समय के साथ बदलते रहते हैं। ऐसे में दृष्टिकोण के भीतर भी कई तर्क जन्मते हैं।

5.2.1: सतत समुदाय (Sustainable Community)

सतत समुदाय की अवधारणा का लक्ष्य तभी हासिल किया जा सकता है, जब रूपांतरण दृष्टिकोण को आत्मसात कर लिया जाये, जो सामाजिक और पर्यावरणीय, दोनों को पुष्ट करता है। पर्यावरण एवं समाज

अंतर्संबंधित हैं और इस प्रकार वे एक–दूसरे के कल्याण के लिये (सतत उत्पादन तथा सतत उपभोग के जरिये) महत्वपूर्ण हो जाते हैं। Figure 4 से हम सतत समुदाय के विचार को आसानी से समझ सकते हैं।

इसमें सामाजिक, आर्थिक और पर्यावरणीय मुद्दों को एकसाथ रखकर स्पष्ट किया गया है।

Figure 5: Mapping Sustainable community

5.3: सतत पर्वतीय विकास ैनेजंपदंइसम डवनदजंपद क्मअमसवचउमदज)

पर्वत वै"वक महत्व की नाजुक पारिस्थितिकी का हिस्सा हैं। पर्वतों की पहचान जल के असीम स्रोत, समृद्ध जैवविविधता के संरक्षक, मनोरंजन–पर्यटन क्षेत्र और सांस्कृतिक एवं विरासती क्षेत्र के रूप में की जाती है ;प्च्ब्ए 2007य ैंतउं मज ंसण्ए 2010द्धण वै"वक पारिस्थितिकी के अस्तित्व और सफल संचालन के लिये पर्वतीय पारिस्थितिकी का अक्षुण्ण रहना आव"यक है। 1992 में रियो कांफ्रेंस में पर्वतीय पारिस्थितिकी के महत्व को स्पष्ट किया गया। बताया गया कि दुनिया की दस फीसदी आबादी पानी, जंगल, कृषि उत्पाद, पोषक तत्वों आदि आव"यकताओं की पूर्ति के लिये प्रत्यक्ष रूप से पर्वतीय संसाधनों पर ही निर्भर हैं। यही नहीं, घाटियों और मैदानी क्षेत्रों में रहने वाली आबादी भी पानी के लिये पर्वतों पर ही निर्भर हैं, क्योंकि इन स्थानों को पानी उपलब्ध कराने वाली नदियां पर्वतों से निकलती हैं। एजेंडा 21 में यह दृष्टिकोण भी उभरकर आया कि दुनिया की करीब 40 फीसदी आबादी मध्यम अथवा निम्न जलस्रोत वाले क्षेत्रों में रह रही है। आबादी में लगातार वृद्धि और पर्यटन, आर्थिक गतिविधियों के नाम पर पर्वतीय क्षेत्रों तक लोगों की पहुंच के बढ़ने का परिणाम पर्यावरणीय नुकसान के रूप में सामने आ रहा है। एजेंडा 21 ने हिमालयी क्षेत्रों में आबादी की बढ़ोतरी के कारण फसली भूमि के विस्तार के कारण हो रहे पर्यावरणीय नुकसान पर वि"ोष ध्यान दिलाया है।

5.3.1: पर्वतों में सतत विकास के मुद्दे (Issues of Sustainable Development in Mountains)

पर्वतीय मुद्दों को लेकर जागरूकता और अच्छे परिणामों के बावजूद रिपोर्ट कई बाधाओं को भी उजागर करती है, जो सतत पर्वतीय विकास, पर्वतीय समुदायों और उनके पर्यावरण के लिये अब भी खतरा बनी हुयी हैं:

- बढ़ती आबादी और घटते स्रोतों के चलते पानी और अन्य प्राकृतिक संसाधनों की निरंतर बढ़ती मांग
- पर्यटन गतिविधियों के विस्तार से पर्वतों पर जरूरत से अधिक भीड़ का बोझ लगातार बढ़ना
- मौसम चक्र में बदलाव के कारण कृषि, स्वास्थ्य, ग्लेशियरों, जल स्रोतों, जैवविविधता पर बुरा असर
- बादल फटना, अचानक बाढ़, सूखा, भूस्खलन जैसी प्राकृतिक आपदाओं में लगातार बढ़ोतरी
- शिक्षा के अभाव, रोजगार और अवस्थापना सुविधाओं की कमी, सशक्तीकरण तथा क्षमता संसाधनों के विकास को लेकर उपेक्षात्मक रवैये के कारण बढ़ता पलायन
- संसाधनों तक पहुंच, उनके उपभोग, लाभ वितरण, संसाधनों के प्रबंधन को लेकर अंतर्विरोध, साथ ही मानव और वन्यजीवों के बीच भी संघर्ष में वृद्धि
- औद्योगीकरण, खनन और कृषि का दबाव, जिसका लक्ष्य सिर्फ अधिक से अधिक उत्पादन है
- कम उत्पादन, विकल्पों की कमी, प्राकृतिक संसाधनों की बेहद सीमित पहुंच अथवा पहुंच पर प्रतिबंध के कारण खाद्य असुरक्षा

5.3.2: मार्गदर्शक सिद्धांत (**Guiding Principles**)

सतत पर्वतीय विकास का लक्ष्य निम्न सिद्धांतों को अपनाकर हासिल किया जा सकता है:

- **विशिष्ट पर्वतीय नीतियां (Mountain Specific Strategies)**: वैश्विक सतत विकास की प्रक्रिया में पर्वतीय क्षेत्र विशिष्ट चुनौती और हरित अर्थव्यवस्था के अवसर भी पेश करते हैं। ऐसे में प्रभावी कार्यों के लिये लक्ष्याधारित नीतियां तैयार करना आवश्यक हो जाता है, विशेषकर राष्ट्रीय स्तर पर। वैश्विक व क्षेत्रीय संस्थान, सम्मेलन और कार्यनीतियां, (जैसे– UN Framework Convention on Climate Change, the UN Convention on Biological Diversity, and the UN Convention to Combat Desertification) को पर्वतीय क्षेत्रों में विशिष्ट कार्यों, उद्देश्यों की पूर्ति से जोड़ा जाना चाहिये।
- **सीमापार सहयोग (Transboundary Co-operation)**: कई पर्वतीय पारिस्थितिकी तंत्र और उनकी सेवाएं राष्ट्रीय सीमाओं के भी पार जाती हैं, इसके अलावा अधिकतर पर्वतीय सेवाएं पर्वतीय क्षेत्रों के मुकाबले मैदानी क्षेत्रों को अधिक लाभान्वित करती हैं। ऐसे में सीमापार सहयोग तथा मैदानी–पर्वतीय संयोजन प्रभावोत्पादकता को बढ़ा सकता है। ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों में परस्पर आर्थिक निर्भरता बढ़ाने के अलावा पर्वतीय क्षेत्रों, निचले नगरों और निकायों के बीच सहयोग–समन्वय भी विकसित करना आवश्यक है।
- **शासन एवं संस्थान (Governance and Institutions)**: एजेंडा 21 भावी कार्यशैली के लिये मूल तत्व है, जो बताता है कि बेहतर परिणाम के लिये सभी हितधारकों की सहभागिता आवश्यक है। विशेष तौर पर पर्वतीय आबादी को नियोजन और नीतियों को लागू करने तक निर्णय लेने की प्रक्रिया में सहभागी बनाया जाना चाहिये।
- **पारिस्थितिकी वस्तुओं और सेवाओं की भरपाई (Compensation for Ecosystem Goods and Services)**: पर्वतीय आबादी को पारिस्थितिकी सेवाओं और वस्तुओं के उपभोग के बदले मदद करने से स्थानीय आजीविका के नये साधन विकसित होंगे, जिनसे निर्धनता कम होगी और आवश्यक वस्तुओं–सेवाओं का सतत प्रवाह बना रहेगा, जो सबके लिये लाभकारी होगा।
- **संतुलित विकास एवं संरक्षण (Balance Conservation and Development)**: पर्वतीय पारिस्थितिकी बेहद नाजुक होती है। नियंत्रण से बाहर के विभिन्न कारणों से पर्वतीय क्षेत्र अकसर विकास की दौड़ में पीछे रह जाते हैं। ऐसे में विकास और संरक्षण में संतुलन का होना बहुत जरूरी है। समृद्ध स्थानीय और क्षेत्रीय ज्ञान तथा लक्षित निवेश इस उद्देश्य की पूर्ति करने में मददगार हो सकता है।
- **अंतर्राष्ट्रीय सहयोग सिद्धांतों से अनुकूलता (Coherence with Principles of International Cooperation)**: पर्वतीय क्षेत्रों में मौजूदा और परिवर्तनशील सिद्वांतों, नियमों व अंतर्राष्ट्रीय सहयोग के सामूहिक प्रयासों की आवश्यकता है। इनमें विभिन्न दायित्वों के निर्वहन, आंतरिक और अंतरपीढ़ीगत समानता, सुरक्षात्मकता, सीमापार सहयोग, पुरुषों–महिलाओं और बच्चों के मानवाधिकार, पारंपरिक ज्ञान का संरक्षण आदि पहलू शामिल हैं।

5.4: निष्कर्ष (Conclusion)

सभी दृष्टिकोणों के समर्थक परिवर्तन के विचार के पक्षधर हैं, भले ही वे आर्थिक सुधार के जरिये हो या सामाजिक सुधार या फिर पर्यावरणीय सुधार के माध्यम से। हालांकि, सतत विकास के समर्थक मानते हैं कि समाज में परिवर्तन की आवश्यकता है, लेकिन यहां सतत विकास की प्रकृति, आवश्यक परिवर्तन, परिवर्तन

के कारक और साधनों को लेकर तर्क–वितर्क की गुंजाइश बनी रहती है। ऐसा करने के दौरान अधिकतर लोग मौजूदा राजनीतिक और दार्शनिक दृष्टिकोण को सामने रखते हैं, जिसके चलते लक्ष्यों को हासिल करने की दिशा भटक सी जाती है और असमंजस की स्थिति पनपती है। ऐसा इसलिये होता है, क्योंकि कोई राजनीतिक मुद्दा किसी व्यक्ति के लिये अधिक महत्व का हो सकता है, लेकिन दूसरे के लिये नहीं। चूंकि, सतत विकास को लेकर कोई दृढ़ एकल सिद्धांत, दर्शन अब तक सामने नहीं आया है, लिहाजा 'सतत विकासवाद' भी धरातल पर नजर नहीं आता (Hopwood et al., 2005).

कुछ अवसरों पर सुधार और रूपांतरण के समर्थक अपने तर्कों को इसलिये हल्का कर लेते हैं कि शासन अथवा व्यावसायिक गतिविधियां सततता के साथ चलते रहें। यथास्थिति एवं रूपांतरण दृष्टिकोणों के समर्थकों के बीच बुनियादी अंतर है। यथास्थिति समर्थक एक तरफ तो प्रबंधन के जरिये मौजूदा निर्णय निर्धारण ढांचे में परिवर्तन चाहते हैं, वहीं दूसरी ओर रूपांतरण समर्थक मौजूदा ढांचे के भीतर और बाहर राजनीतिक क्रियाओं के जरिये परिवर्तन की मंशा रखते हैं। पर्यावरणीय मुद्दों को लेकर वैश्विक जागरूकता के बावजूद भी सतत विकास वैश्विक नीतियों में उच्च स्थान नहीं रखता है। यहां तक कि मौसम चक्र में परिवर्तन, भुखमरी जैसे मसले भी समाचारों और राजनीतिक बहस का अपेक्षित हिस्सा नहीं बन पाते। हालांकि, सतत विकास के मूल बिन्दु यानी पर्यावरण और समानता ने काफी हद तक राजनीतिक एजेंडा पर दबाव तो बनाया है। सतत विकास का सामान्य मॉडल पर्यावरण, समाज और अर्थव्यवस्था के तीन अलग–अलग, लेकिन एक–दूसरे से संबद्ध चक्रों पर आधारित है। इस तरह हर चक्र में होने वाला बदलाव दूसरे पर असर डालता है।

मानव–पर्यावरण संबंधों को इस तरह देखा जाना चाहिये कि मानवता पर्यावरण पर ही निर्भर है, जिसमें समाज का भी अस्तित्व है और अर्थव्यवस्था समाज पर निर्भर है। मानव पर्यावरण के दायरे में ही अपने अस्तित्व और कुशलता का प्रयास करते हैं, लिहाजा सामाजिक–आर्थिक पहलुओं पर चिंतन के दौरान पर्यावरण के विषय को नकारा नहीं जा सकता है। वैज्ञानिक शोधों से मिले तथ्यों ने साफ किया है कि मौसम चक्र में आ रहा बदलाव औद्योगीकरण, अंधाधुंध दोहन और अनुचित उत्पादन जैसी लगातार बढ़ती मानवीय गतिविधियों का परिणाम है और पर्यावरण से सीधे जुड़े होने के कारण इसका नुकसान सबसे अधिक मानव समुदाय को ही उठाना पड़ा है। इस बिन्दु को ध्यान में रखते हुये विभिन्न विद्वानों ने चेताया है कि समाज की भलाई के लिये यथास्थिति का समर्थन उचित नहीं होगा, अभी नही ंतो भविष्य में हमें सतत विकास की ओर कदम बढ़ाना ही होगा। हालांकि, निश्चित एवं समयबद्ध सुधार के चलते रूपांतरण के दृष्टिकोण को सामाजिक, पर्यावरणीय और आर्थिक समस्याओं के निस्तारण का सबसे प्रभावी तरीका माना जाता है।

5.5: सन्दर्भ (Refernces)

1) Alier JM. 2003. Problems of ecological degradation: environmental justice or ecological modernization. Capitalism Nature Socialism 14: 133.
2) Barton H. 2000. Conflicting perceptions of neighbourhood. In Sustainable Communities, Barton H (ed.). Earthscan: London; 3–18.

3) Blowers A. 1993. The time for change. In Planning for a Sustainable Environment, Blowers A (ed). Earthscan: London; 1–18.
4) Dobson A. 2000. Sustainable development and the defence of the natural world. In Global Sustainable Development in the 21st Century, Lee K, Holland A, McNeill D (eds). Edinburgh University Press: Edinburgh; 49–60.
5) Douthwaite R. 1992. The Growth Illusion. Green: Bideford.
6) Dryzek J. 1997. The Politics of the Earth. Oxford University Press: Oxford.
7) Giddings B, Hopwood B, O'Brien G. 2002. Environment, economy and society: fitting them together into sustainable development. Sustainable Development 10: 187–196.
8) Hardin G. 1968. Tragedy of the commons. In Valuing the Earth: Economics, Ecology Ethics, Daly H, Townsend K (eds). MIT Press: Cambridge, MA; 127–143.
9) Hardin G. 1974. Living on a lifeboat. BioScience 24: 10.
10) Hardi P, Zdan T. 1997. Assessing Sustainable Development. International Institute for Sustainable Development: Winnipeg.
11) Haughton G. 1999. Environmental justice and the sustainable city. Journal of Planning Education and Research 18: 233–243.
12) Hopwood, B., Mellor, M., & O'Brien, G. (2005). Sustainable development: mapping different approaches. Sustainable development, 13(1), 38-52.
13) IUCN, UNEP, WWF. 1980. World Conservation Strategy: Living Resource Conservation for Sustainable Development. IUCN: Gland, Switzerland.
14) IPCC [Intergovernmental Panel on Climate Change]. 2007. Climate Change 2007: Synthesis Report. Contribution of Working Groups I, II, and III to the Fourth Assessment Report of the IPCC. Geneva, Switzerland: IPCC.
15) Lomborg B. 2001. The Sceptical Environmentalists: Measuring the Real State of the World. Cambridge University Press: Cambridge.
16) Marcuse P. 1998. Sustainability is not enough. Environment and Urbanization 10: 103–111.
17) Meadows D, Meadows D, Randers J, Behrens W. 1972. The Limits to Growth: a Report for the Club of Rome's Project on the Predicament of Mankind. Earth Island: London.
18) Meadows D, Meadows D, Randers J. 1992. Beyond the Limits: Global Collapse or a Sustainable Future. Earthscan: London.

19) Merchant C. 1992. Radical Ecology. Routledge: London.
20) Naess, A. and Sessions, G. 1984. Basic principles of deep ecology. Ecophilosophy, 6: 3–7.
21) O'Riordan T. 1989. The challenge for environmentalism. In New Models in Geography, Peet R, Thrift N (eds). Unwin Hyman: London; 77–102.
22) OECD. 2001. Policies to Enhance Sustainable Development. OECD: Paris.
23) Sachs W. 1999. Planet Dialectics. Zed: London.
24) Sharma E, Chettri N, Oli K. 2010. Mountain biodiversity conservation and management: A paradigm shift in policies and practices in the Hindu Kush–Himalayas. Ecological Research 25:909–923.
25) Simon J, Kahn H (eds). 1984. The Resourceful Earth: a Response to Global 2000. Blackwell: Oxford.
26) United Nation 1992. AGENDA 21. United Nations Conference on Environment & Development Rio de Janerio, Brazil, 3 to 14 June 1992.
27) Wackernagel M, Rees W. 1996. Our Ecological Footprint. New Society: Gabriola Island, Canada.
28) World Bank. 2000. World Development Report 2000–2001: Attacking Poverty. Oxford University Press: New York.
29) World Business Council for Sustainable Development. 1998. Trade Environment and Sustainable Development: a Briefing Manual. World Business Council for Sustainable Development: Geneva.
30) World Commission on Environment and Development (WCED). 1987. Our Common Future. Oxford University Press: Oxford.

इकाई -6
विकास प्रेरित विस्थापन के कारण, परिणाम और चुनौतियां
Causes, Consequences and Challenges of Development Induced Displacement

6.0 उद्देश्य
6.1 परिचय
6.2 विस्थापन के प्रकार
6.3 विस्थापन के कारण
6.4 विकास प्रेरित विस्थापन
6.5 विकास प्रेरित विस्थापन के परिणाम
6.6 आंतरिक विस्थापन के निर्देशक सिद्धांत
6.7 सन्दर्भ

6.0 उद्देश्य
इस इकाई के अध्ययन का उद्देश्य विकास के कारण होने वाले विस्थापन को गहराई से जानना–समझना है। इकाई के अध्ययन के बाद हम इस विस्थापन के कारणों, इसके परिणामों और इसकी वजह से सामने आने वाली चुनौतियों के बारे में जान सकेंगे।

6.1 परिचय
पृथ्वी एक नाजुक, संवेदन''ील, अंतर्संयोजित व्यवस्थाओं और तंत्र के एक अतुल्य जटिल नेटवर्क वाला ग्रह है, जिसका विकास साढ़े चार लाख वर्षों से भी अधिक समय से लगातार जारी है। धरती पर जीवन के प्रारंभ के साथ हर वस्तु, घटना के पीछे प्राकृतिक विकास की प्रक्रिया रही है। हालांकि, प्रजाति के रूप में मानवों के विकास ने इस प्राकृतिक श्रेणीक्रम को प्रभावित करना शुरू किया है। सात अरब से अधिक आबादी के साथ मनुष्यों ने पृथ्वी की प्राकृतिक व्यवस्था पर खासा असर डाला है। मानव इतिहास इस बात का प्रतीक रहा है कि व्यक्तिगत अधिकार और मानवता के लक्ष्य को पूरा करने की जरूरत है। हालांकि, ऐतिहासिक रूप से कई बार समाजों ने व्यक्तिगत अधिकारों और सत्ता''ाक्ति, राज्य के बीच संतुलन बनाये रखने का प्रयास किया है (Terminski, 2013). कई बार संतुलन की इस प्रक्रिया में संसाधनों, जीवनस्तर, आजीविका आदि के लिये बेहतर और समृद्ध स्थानों की ओर विस्थापन, पलायन देखा जाता है। पलायन कई बार स्वैच्छिक (निजी आव''यकताओं की पूर्ति के लिये) हो सकता है, लेकिन कई बार यह बलात अथवा अनैच्छिक (विद्रोह के कारण अथवा विकास गतिविधियों के संचालन के कारण) भी हो सकता है।

International Organization for Migration के अनुसार बलात पलायन में कोई व्यक्ति उत्पीड़न, दमन, प्राकृतिक और मानवनिर्मित आपदाओं, पारिस्थितिकीय अपमानक या जीवन को खतरे में डालने वाली परिस्थितियों से बचाव, स्वतंत्रता अथवा बेहतर आजीविका के लिये एक से दूसरे स्थान की ओर जाता है। इस तरह विस्थापित होने वाले लोगों को बलात पलायित या विस्थापित या कई बार दे''ा के भीतर ही विस्थापित शरणार्थी भी कहा जाता है। World Migration Report 2018 के अनुसार वर्ष

2015 में 24 करोड़ से अधिक लोग अंतर्राष्ट्रीय विस्थापित थे, जो वैि"वक जनसंख्या का करीब 3.3 प्रति"ात था। यहां यह तथ्य महत्वपूर्ण है कि पलायन करने वाले अधिकतर लोग सीमाओं को पार नहीं करते, वे उसी दे"ा की सीमाओं के भीतर रहना चाहते हैं जहां उनका जन्म हुआ। इसके चलते किसी दे"ा के भीतर ही विस्थापित होने वाले लोगों की बड़ी संख्या रहती है। हाल के वर्षों में आंतरिक यानी दे"ा के भीतर और सीमापार यानी एक से दूसरे दे"ा में पलायन करने वाले लोगों की संख्या में खासा इजाफा दर्ज किया गया है। इस तरह के पलायन की वजह नागरिक और अंतर्राज्यीय, अंतर्राष्ट्रीय संघर्ष हैं। वर्ष 2016 के आकलन के अनुसार 4.03 करोड़ लोगों ने अपने–अपने दे"ा के भीतर ही विस्थापन किया, जो वर्ष 2015 में 4.08 करोड़ के आंकड़े से कुछ कम रहा। वहीं, वर्ष 2018 में 2.25 करोड़ अंतर्राष्ट्रीय शरणार्थी दुनियाभर में थे, जिनमें पांच लाख के करीब म्यांमार से भारत और बांग्लादे"ा में आने वाले रोहिंग्या रहे।

Table 1. International migrants, 1970–2015

Year	Number of migrants	Migrants as a % of world's population
1970	84,460,125	2.3%
1975	90,368,010	2.2%
1980	101,983,149	2.3%
1985	113,206,691	2.3%
1990	152,563,212	2.9%
1995	160,801,752	2.8%
2000	172,703,309	2.8%
2005	191,269,100	2.9%
2010	221,714,243	3.2%
2015	243,700,236	3.3%

Source: Adapted from World Migration Report 2018

6.2 विस्थापन के प्रकार (Types of Displacement)

विस्थापन को मुख्यतः तीन श्रेणियों में बांटकर देखा जा सकता हैः

- **स्वैच्छिक विस्थापन (Voluntary Displacement):** यह ऐसी परिस्थिति है, जब कोई आबादी स्वयं अपने विस्थापन के लिये प्रयास करती है। उस पर कोई बाहरी दबाव नहीं होता है।

- **बलात या मजबूरन विस्थापन (Forced Displacement):** इस प्रक्रिया में किसी परिवार या समुदाय को उनकी इच्छा के विपरीत और विरोध के बावजूद विस्थापित कर दिया जाता है।

- **प्रेरित विस्थापन (Induced Displacement):** जब विकास एजेंसियों द्वारा उत्पन्न परिस्थितियों (जब मौजूदा प्राकृतिक पर्यावरण में आजीविका के लिहाज से रह पाना मुश्किल हो जाता है) के कारण प्रभावित समुदाय और आबादी विस्थापन की मांग करते हैं। इन परिस्थितियों के कारण संबंधित लोगों को विकास एजेंसियों के उत्पीड़न, दबाव का सामना करना पड़ता है। उनकी आजीविका पर तमाम प्रतिबंध लग जाते हैं, बुनियादी सुविधाएं भी नहीं मिल पातीं और विकास परियोजनाओं के चलते संरक्षित किये गये क्षेत्र से उन्हें बाहर जाना पड़ता है। हालांकि, प्रेरित विस्थापन को हालिया दौर में कई बार गलती से स्वैच्छिक मान लिया जाता है।

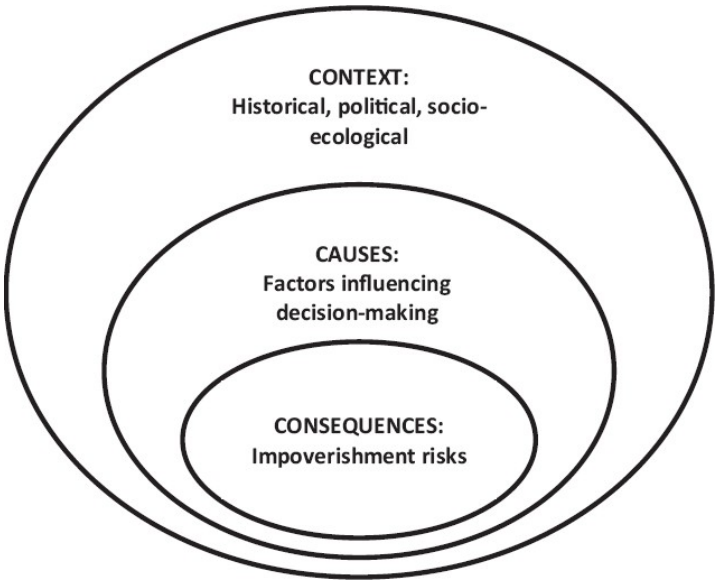

Figure 1: A framework for understanding the causes and consequences of displacement

6.3 विस्थापन के कारण (Causes of Displacement)

लोगों का पलायन सामाजिक परिवर्तन का स्वरूप है जो विभिन्न कारकों से होता है, जिसमें हथियारबंद संघर्ष सबसे आम है। हालांकि, प्राकृतिक आपदाएं, नागरिक संघर्ष, विकास और आर्थिक गतिविधियां, सूखा आदि भी मानवीय विस्थापन के कारण हैं। विश्वभर में आबादी के बढ़ते दबाव, भूमि पर शहरीकरण के दबाव, बेहद त्वरित आर्थिक विकास, अवस्थापना ढांचे की बढ़ती जरूरतों ने हाल के दशकों में विस्थापन और पलायन को लगातार बढ़ाया है। सामान्यतः अधिकतर विस्थापन में मानवाधिकारों का हनन स्पष्ट देखा जा सकता है। विस्थापन के कारकों को हम निम्नवत विस्तार से जान सकेंगेः

- **हथियारबंद युद्ध और नागरिक विद्रोहः** देश के भीतर और एक से अन्य देश में मानव आबादी के बलात विस्थापन के पीछे का यह सबसे प्रमुख कारण है। इस तरह के विस्थापन के पीछे मुख्यतः राजनीतिक, सामाजिक, पारंपरिक और धार्मिक कारण होते हैं। उदाहरण के लिये सीरिया,

अफगानिस्तान और सोमालिया में युद्ध के दौरान भारी पलायन दर्ज किया गया। विश्वभर में शरणार्थियों की कुल संख्या का 54 प्रतिशत हिस्सा इन तीन देशों का ही रहा। सीरिया इस मामले में सबसे आगे रहा, जहां से 49 लाख से अधिक लोग दूसरे देशों में शरण लेने पर मजबूर हुये। इसी तरह अफगानिस्तान से 27 लाख से अधिक और सोमालिया से 11 लाख से अधिक लोग विस्थापित हुये।

- **प्राकृतिक आपदाएंः** बादल फटना, बाढ़, भूस्खलन, भूकंप, ज्वालामुखी, वनाग्नि, सुनामी, हरीकेन–टॉरनेडो तूफान जैसी प्राकृतिक आपदाएं भी मानव आबादी के विस्थापन की मुख्य वजह है। इस तरह का विस्थापन दरअसल, अस्तित्व को बचाये रखने के प्रयास के तौर पर होता है। प्राकृतिक आपदाओं और इनके कारण आजीविका, संसाधनों को हुये नुकसान, पर्यावरणीय हानि के कारण वर्ष 2009 से 2010 तक पांच करोड़ से अधिक लोग दुनियाभर में विस्थापित हुये। वर्ष 2009 में भारत में बाढ़ और तूफान के कारण आयी सबसे बड़ी आपदा 50 लाख लोगों के विस्थापन की वजह बनी। इसी तरह 2010 में पाकिस्तान में आयी बाढ़ के कारण 15 लाख से अधिक लोग विस्थापित हुये। सुनामी, ज्वालामुखी, भूकंप जैसी आपदाओं के कारण वर्ष 2008 से 2010 के बीच विभिन्न देशों में 1.6 करोड़ लोग विस्थापित हुये। वर्ष 2013 की केदारनाथ आपदा, जम्मू–कश्मीर में बाढ़ ने भी करीब 10 लाख लोगों को विस्थापन के लिये मजबूर किया।

- **आर्थिक विकासः** विकास संबंधी गतिविधियों ने भी मानव आबादी को अपने घरों, गृहक्षेत्र और राज्य से आर्थिक विकास के उद्देश्य से विस्थापन के लिये मजबूर किया है। ऐतिहासिक रूप से इस तरह का विस्थापन मुख्यतः बांधों के निर्माण, सिंचाई परियोजनाओं, खनन, सड़क, रेलमार्ग, नहरों, बंदरगाहों, एयरपोर्ट आदि के विकास के कारण होता है।

- **वन्यजीव प्रबंधन और संरक्षणः** नेशनल पार्क, टाइगर रिजर्व, एलीफेंट रिजर्व, वन्यजीव अभ्यारण्य और संरक्षित क्षेत्रों के कारण भी बड़ी आबादी को विस्थापित होना पड़ता है। उदाहरण के लिये उत्तराखंड में कॉर्बेट नेशनल पार्क, राजाजी नेशनल पार्क के आसपास और वनक्षेत्रों के भीतर रहने वाले लोगों को संरक्षित क्षेत्रों से निकालकर विस्थापित किया गया है।

- **मानव तस्करी और गुलामीः** कई देशों में लोग इसलिये पलायन करते हैं कि वे शोषण से बचे रहें। चूंकि मानव तस्करी जैसी गतिविधियां बेहद गुप्त होती हैं, इनके संबंध में अधिक और सही आंकड़ा उपलब्ध नहीं हो पाता है। 15वीं से 19वीं सदी तक अफ्रीका, एशिया और अमेरिका में दो करोड़ से अधिक लोगों को बंधक बनाकर गुलाम बनाने के लिये विस्थापित किया गया था।

- **पारंपरिक समुदायों के संघर्षः** कई बार शक्तिशाली समूह किसी क्षेत्रविशेष में रहने वाले पारंपरिक समुदाय को खदेड़ देता है। इसके पीछे शक्तिशाली समूह का खुद की परंपरा को बढ़ावा देने का मकसद होता है। ऐसे हालिया उदाहरणों में म्यांमार शामिल है, जहां से कई लोग दो समूहों के बीच चल रहे संघर्ष के चलते विस्थापित हुये हैं।

इनके अलावा विस्थापन तब भी सामने आता है, जब विस्थापित होने वाली आबादी प्रथम विस्थापन की जगह पर भी अवसरों और अवस्थापना का अभाव अनुभव करती है। इसे द्वितीयक विस्थापन कहा जाता है

और यह एक के बाद एक कई विस्थापनों की वजह बन सकता है। बलात विस्थापन की प्रक्रिया विस्थापित लोगों को अकसर निर्धनता की ओर धकेल देती है, क्योंकि विस्थापन की नयी जगह पर सामान्यतः प्रभावी जीवन जीने के लिये विस्थापित आबादी के मूल स्थान के मुकाबले पर्याप्त अवसरों का अभाव रहता है।

6.4 विकास प्रेरित विस्थापन (Development Induced Displacement)

भारत जैसी तेजी से विकसित होती अर्थव्यवस्था में सरकार विकास और अवस्थापना ढांचे की स्थापना के लिये बड़ी मात्रा में भूमि अधिग्रहण करती है। आंकड़े बताते हैं कि 90 के दशक में विकास परियोजनाओं की स्थापना के लिये भारत में दस करोड़ के करीब लोगों को विस्थापित होना पड़ा। दुनियाभर में करोड़ों लोग इसी तरह विस्थापित हुये हैं। रॉबिन्सन (2003) ने विकास के कारण विस्थापन की कुछ श्रेणियों को स्पष्ट किया है। इनमें शहरी अवस्थापना विकास, परिवहन सुविधा का विकास– सड़कें, हाईवे, नहरें, जल वितरण– बांध निर्माण, जल संरक्षण क्षेत्र, सिंचाई परियोजनाएं, ऊर्जा– हाइड्रोपावर, कोयला प्लांट, न्यूक्लियर प्लांट, तेल पाइपलाइन, खनन, कृषि विस्तार, पार्क–वन संरक्षित क्षेत्र और आबादी पुनर्व्यवस्था योजनाएं शामिल हैं।

विकास प्रेरित विस्थापन को समस्याओं का कारण माना जाता है। मुख्यतः जब यह आबादी के किसी विशेष वर्ग को लक्षित करता है, जिनमें निर्धन, पारंपरिक, जातीय, धार्मिक–राजनीतिक अल्पसंख्यक, पारंपरिक जनजातीय और अन्य उपेक्षित समूह होते हैं। ऐसी स्थिति में कई बार देखा जाता है कि विकास प्रक्रियाओं के चलते मानवाधिकारों का हनन होने लगता है। ऐसे में अंतर्राष्ट्रीय समुदाय के स्तर पर निर्देशक सिद्धांतों का ध्यान रखा जाना आवश्यक होता है, जो अंतर्राष्ट्रीय वित्तीय संस्थानों, संयुक्त राष्ट्र संघ, अंतर्राष्ट्रीय संस्थाओं, गैर सरकारी संस्थाओं द्वारा तैयार किये जाते हैं।

भारत में विकास प्रेरित विस्थापन का इतिहास

भारत में विश्व की सर्वाधिक विकास परियोजनाएं संचालित हो रही हैं। भारत में 19वीं सदी के प्रारंभ से ही विकास गतिविधियों के कारण आबादी के विस्थापन की प्रक्रिया प्रारंभ हो गयी थी। औपनिवेशिक काल के दौरान झारखंड में कोयला खदानों, बंगाल और असोम में चाय बागान (जहां बड़ी संख्या में छत्तीसगढ़, ओडिशा और झारखंड के लोग गुलामों की तरह काम किया करते थे), कर्नाटक में कॉफी और ऐसी ही कई योजनाएं प्रारंभ की गयीं। इन सभी परियोजनाओं के विकास के लिये बड़ी मात्रा में भूमि की जरूरत को देखते हुये भूमि अधिग्रहण की प्रक्रिया में कई संशोधन किये गये। भूमि अधिग्रहण के चलते लाखों लोगों को विकास के लिये विस्थापित होना पड़ा। वर्ष 2013 तक भारत में भूमि अधिग्रहण की प्रक्रिया Permanent Settlement 1793 तथा Land Acquisition Act 1894 के तहत पूरी होती थीं। वर्ष 2013 में Right to Fair Compensation and Transparency in Land Acquisition, Rehabilitation and Resettlement Act, 2013 तैयार किया गया, जो एक जनवरी 2014 से लागू हुआ। इस कानून के दो पहलू हैं, पहला यह कि राज्य (शासन) हर तरह की जैवविविधता, प्राकृतिक संसाधनों और भूमि का उपयोग एवं स्वामित्व ले सकता है, दूसरा राज्य को इस बात का पूर्ण अधिकार है कि वह सार्वजनिक लाभ के उद्देश्यों को स्पष्ट करते हुये निजी जमीनों पर काबिज लोगों को विस्थापित कर सके।

भारत में स्वतंत्रता के पश्चात चार दशकों में 2.1 करोड़ से अधिक लोग विभिन्न विकास परियोजनाओं के कारण विस्थापित हुये, जिनमें जनजातीय समुदायों की 40 प्रतिशत संख्या रही (Robinson 2003). अप्रत्यक्ष विस्थापन लोगों को पारंपरिक आजीविका संसाधनों से दूर कर देता है। 1950 से 1960 के दशक में भारतीय पारंपरिक समाज इसी वजह से आधुनिक और जटिल समाज के तौर पर बदलता देखा गया। तकनीकी, पूंजी संबंधी पहल और विकास परियोजनाओं के बड़े पैमाने पर संचालन ने भारतीय समाज की अर्थव्यवस्था को गति प्रदान की। लेकिन, विकास की इस पूरी प्रक्रिया ने भारतीय समाज के निर्धनतम वर्गों, जनजातियों और वनवासी समूहों को और अधिक निर्धनता की ओर धकेल दिया, क्योंकि वे अपनी पारंपरिक आजीविका, प्राकृतिक संसाधनों, संपत्तियों और सामाजिक ढांचे से दूर होते चले गये। इन चुनौतियों को देखते हुये नव विकासवाद का उभार हुआ, जिसमें निर्धनता उन्मूलन, पर्यावरणीय संरक्षण, सामाजिक न्याय, मानवाधिकार आदि पहलुओं को शामिल करने की कोशिश की गयी। सरदार सरोवर बांध और नर्मदा नदी पर सिंचाई परियोजनाएं भारत की ऐसी सर्वाधिक विवादित परियोजनाएं रहीं, जिन्हें भारत में विकास प्रेरित विस्थापन का बड़ा उदाहरण माना जा सकता है। परियोजना का शिलान्यास अप्रैल 1961 में प्रथम प्रधानमंत्री श्री जवाहरलाल नेहरू ने किया था और इसका उद्घाटन वर्तमान पीएम श्री नरेन्द्र मोदी ने 17 सितंबर 2017 को किया। सरकार का दावा है कि सरदार सरोवर परियोजना से गुजरात में सूखा प्रभावित 18 लाख हेक्टेअर और राजस्थान में 75 हजार हेक्टेअर भूमि को सिंचाई का पानी, 24 लाख लोगों को पीने का पानी उपलब्ध हुआ। परियोजना के चलते तीन लाख 20 हजार लोगों को विस्थापित किया गया और हजारों लोगों की आजीविका पर भी असर पड़ा। विभिन्न शोधों का आकलन है कि भारत में बीते 50 वर्षों में बांधों के कारण कम से कम दो करोड़ 16 लाख (VijayaParanjpye 1988), दो करोड़ से चार करोड़ के बीच (Taneja and Thakkar, 2000), कुल मिलाकर पांच करोड़ लोग (Negi and Ganguly, 2011), छह करोड़ (Fernandes 2014) विस्थापित हुये।

हिमालयी राज्यों में विकास प्रेरित विस्थापन

हिमालयी राज्यों में विकास प्रेरित विस्थापन वैश्विक चिंता का विषय रहा है। हिमालयी राज्य उत्तराखंड में एशिया का सबसे बड़ा बांध टिहरी जलविद्युत परियोजना बना है, जो उत्तर भारत के बड़े हिस्से को बिजली, पेयजल और सिंचाई का पानी उपलब्ध कराता है। बांध के पानी के लिये बनाये गये रिजर्वायर ने न सिर्फ टिहरी नगर को डुबो दिया, बल्कि 120 से अधिक गांव पूर्ण या आंशिक रूप से डूब क्षेत्र में आ गये। प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से करीब एक लाख लोगों को देहरादून और अन्य स्थानों पर विस्थापित किया गया, लेकिन ये लोग अब देहरादून में एयरपोर्ट के विस्तारीकरण और अन्य कारणों से फिर विस्थापन की जद में आ गये हैं। 1970 और 1980 में उत्तराखंड में नेशनल पार्कों के कारण भी बड़ी आबादी का विस्थापन हुआ। The Corbett National Park (1936) और Tiger Reserve (1973) के कारण रामनगर और काशीपुर से 500 से अधिक परिवार विस्थापित किये गये। इसी तरह Rajaji National Park (1983) से 1500 गुज्जर परिवारों को हरिद्वार के आसपास पथरी, गैंडीखाता और अन्य स्थानों पर विस्थापित किया गया। इसके अलावा विकास के कारण पर्वतीय जिलों से लोगों का मैदानी जिलों की ओर विस्थापन भी लगातार बढ़ रहा है, लेकिन इस प्रक्रिया के संबंध में अभी विस्तार से शोध, दस्तावेजीकरण नहीं किया जा सका है।

6.5 विकास प्रेरित विस्थापन के परिणाम (Consequences of Development Induced Displacement)

विश्व बैंक से संबद्ध समाजशास्त्री मिशेल सर्निया ने दो दशक तक विकास प्रेरित विस्थापन का अध्ययन किया। उन्होंने पाया कि विस्थापित किये जाने वाले लोगों को उनकी संपत्तियों के बदले मुआवजा और स्वयं को नये स्थान पर बेहतर ढंग से स्थापित करने के लिये सहयोग करने की व्यवस्था तो है, लेकिन हर बार ऐसा नहीं हो पाता। उन्होंने विस्थापन के आठ सामाजिक–आर्थिक परिणामों को स्पष्ट किया है। इसके अलावा दो अन्य परिणाम Terminski (2013) से लिये गये हैं।

सामाजिक–आर्थिक एवं सांस्कृतिक परिणाम

- **भूमिहीनता:** भूमि वह संसाधन है, जिस पर लोगों की आजीविका, आर्थिक गतिविधियां स्थापित होती हैं। विथापित होने वाले लोगों के पूंजीहीन हो जाने का यह बड़ा कारण है कि उन्हें अपनी पारंपरिक जमीन और इसके जरिये निर्मित पूंजी से अलग होना पड़ता है। उदाहरण के लिये– भारत में भूमि के बदले दिया जाने वाला नगद मुआवजा (यानी अधिग्रहीत भूमि के बदले भूमि नहीं देना) देने से कई जगह वनवासी और अन्य अशिक्षित, उपेक्षित समुदायों के लिये नुकसानदायक साबित हुआ।

- **रोजगार का अभाव:** रोजगार का अभाव शहरी और ग्रामीण दोनों तरह के विस्थापन की बड़ी चुनौती है। लोग अपने मूल स्थान पर विभिन्न तरह के रोजगार, सेवाओं, कृषि आदि से जुड़े हुये होते हैं। लेकिन नयी जगह पर विस्थापित होते ही उनके लिये रोजगार के नये अवसर उत्पन्न करना बेहद मुश्किल हो जाता है। उदाहरण के लिये– विंध्याचल सुपर थर्मल पावर प्रोजेक्ट के लिये कुल 2330 परिवार विस्थापित किये गये। लेकिन, विस्थापन के बाद इनमें से 1298 ही चिह्नित किये जा सके और इनमें भी 272 ही परिवारों को नौकरी या स्वरोजगार के जरिये पुनर्वासित किया जा सका।

- **आवासहीनता:** आवास का अभाव विस्थापित होने वाले कम ही लोगों के लिये समस्या बनता है, लेकिन आवासीय मानकों की कमी उनके लिये परेशानी का बड़ा सबब रहता है। सांस्कृतिक तौर पर देखें तो किसी परिवार का अपने वर्षों पुराने घर, किसी समूह का वर्षों पुराने सांस्कृतिक स्थान को छोड़कर आना उन्हें अकेलेपन की ओर धकेल देता है।

- **उपेक्षा:** यह स्थिति तब उत्पन्न होती है, जब संबंधित परिवार अपनी आर्थिक शक्ति गवां देते हैं और स्वयं के विकास के लिहाज से बेहद निचले पायदान पर जा पहुंचते हैं। नयी जगह पर जाने के बाद अधिकतर लोग बहुत तेजी से आर्थिक गतिविधियों में शामिल नहीं हो पाते। इसके चलते उनकी पूंजी कमाने की क्षमता निष्क्रिय होती जाती है और वे सामाजिक–मनोवैज्ञानिक रूप से उपेक्षा का शिकार होने लगते हैं। उनमें आत्मविश्वास का अभाव स्पष्ट होने लगता है, कई बार उन्हें ऐसा भी महसूस होता है कि अपने मूल स्थान से एक बिल्कुल नयी, अनजानी जगह पर भेजकर उनके साथ नाइंसाफी की गयी है।

- **खाद्य असुरक्षा:** बलात विस्थापन लोगों को कई बार पोषण की अस्थायी अथवा गंभीर जोखिम में डाल देता है। इसे इस तरह समझा जा सकता है कि मानव शरीर के लिये आवश्यक प्रोटीन

कैलोरी उन्हें उपलब्ध नहीं हो पाती या अगर मिल भी जाये तो यह इतनी अधिक नहीं होती कि उनका सामान्य शारीरिक विकास संभव हो सके।

- **रुग्णदर एवं मृत्युदर में वृद्धिः** आबादी का भारी पलायन स्वास्थ्य के स्तर में गिरावट का कारण बनता है। विस्थापन के कारण मानसिक–मनोवैज्ञानिक तनाव, चिंता, अवसाद जैसी बीमारियां आदि सामने आती हैं। इसके अलावा मलेरिया जैसे रोगों का भी खतरा रहता है। असुरक्षित पेयजल सप्लाई, खराब सीवेज व्यवस्था, डायरिया और अन्य संक्रामक रोगों का कारण बनते हैं। इसके चलते जनसंख्या की सबसे कमजोर कड़ियां यानी नवजात, बच्चे और बुजुर्ग सबसे अधिक प्रभावित होते हैं।

- **सार्वजनिक संपत्ति तक पहुंच का अभावः** निर्धन लोगों के लिये सार्वजनिक संपत्तियों जैसे वन, जलस्रोत आदि तक पहुंच मुश्किल हो जाती है। इसका उनकी आय और आजीविका के स्तर पर बेहद नकारात्मक असर पड़ता है।

- **सामाजिक पृथक्कीकरणः** बलात विस्थापन का बुनियादी गुण यह है कि यह मौजूदा सामाजिक ढांचे को पूरी तरह छिन्न–भिन्न कर देता है। यह कई स्तर पर देखा जा सकता है। लोगों को विस्थापित किये जाने पर पारंपरिक उत्पादन व्यवस्था खत्म हो जाती है। दशकों–सदियों से चली आ रही आवासीय व्यवस्था ढह जाती है। परिवार, आस–पड़ोस और सामाजिक परिवेश छितर–बितर हो जाता है। ग्राहक–उपभोक्ता के पुराने संबंध खत्म हो जाते हैं। औपचारिक और अनौपचारिक समन्वय, स्थानीय प्रबंधन, प्राचीन बाजार, स्थानिक महत्व के प्रतीक अदि सभी अचानक से समाप्त हो जाते हैं। नये स्थान पर विस्थापित लोगों के लिये अपनी सामाजिक–सांस्कृतिक पहचान बना पाना बेहद जटिल हो जाता है। कुल मिलाकर इस पूरी प्रक्रिया का असर यह होता है कि सामाजिक ताना–बाना बिल्कुल छिन्न–भिन्न हो जाता है।

- **सामुदायिक सुविधाओं तक पहुंच का अभावः** इसमें स्वास्थ्य, शिक्षा समेत विभिन्न पहलुओं को शामिल किया जा सकता है। विस्थापन के चलते बच्चों की शिक्षा में या तो विलंब होने लगता है अथवा इस पर होने वाला खर्चा पहले से अधिक बढ़ जाता है। उदाहरण के लिये ओडिशा में सालंदी सिंचाई परियोजना के चलते विस्थापित हुये परिवारों के लिये बसायी गयी कॉलेनियों में बच्चों के लिये सरकार की ओर से करीब दस साल बाद भी स्कूल नहीं बनाये गये थे।

- **मानवाधिकारों का उल्लंघनः** किसी व्यक्ति को उसके मूल स्थान से विस्थापित करना और पर्याप्त मुआवजा दिये बिना उसका घर–जमीन ले लेना अपने आप में मानवाधिकार का उल्लंघन है। इनके अलावा उपरोक्त वर्णित बिंदु भी नागरिक और राजनैतिक अधिकारों के उल्लंघन का ही स्वरूप माने जा सकते हैं। कुल मिलाकर विस्थापन की प्रक्रिया मानवाधिकारों को खतरे में डालती है और कई बार यह पहले से अवस्थित आबादी समूह में विस्थापित समूह को शामिल करने के दौरान हिंसा का भी कारण बन जाती है।

मानवाधिकारों के उल्लंघन पर विस्तार से बात करें तो विकास प्रेरित विस्थापन निम्न तरह से उल्लंघन का कारण बनता है। इन बिंदुओं को बालकृष्णन राजगोपाल ने मानवाधिकार चुनौतियों के रूप में स्पष्ट किया है और इन्हें टर्मिनेस्की के प्रतिपादन से लिया गया है।

- **स्वयं के विकास और आत्मनिर्णय का अधिकारः** 1986 में संयुक्त राष्ट्र महासभा ने Right to Development की घोषणा की। इसके तहत कहा गया कि प्रत्येक और सभी व्यक्ति आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनैतिक विकास में सहभागिता, योगदान और लाभान्वित होने के अधिकारी हैं, जिसमें सभी मानवाधिकार और बुनियादी स्वतंत्रताएं पूरी तरह परिलक्षित होती हैं। घोषणा में लोगों के आत्मनिर्णय और प्राकृतिक संसाधनों से उपेक्षित नहीं रहने का भी अधिकार दिया गया है। हालांकि, अधिकतर मामलों में इन अधिकारों के हनन की बात सामने आती है।

- **सहभागिता का अधिकारः** सहभागिता का अधिकार International Bill of Human Rights के तहत वर्णित है, जो Universal Declaration of Human Rights (UDHR), International Covenant on Civil and Political Rights (ICCPR) और International Covenant on Economic, Social and Cultural Rights (ICESCR) का संयोजन है। विशेष रूप से वर्ष 1991 में International Labor Organization Convention Concerning Indigenous and Tribal Peoples in Independent Countries (ILO Convention 169) के अनुच्छेद 7 में कहा गया है कि पारंपरिक और जनजातीय लोगों को राष्ट्रीय एवं क्षेत्रीय नियोजन, विकास प्रक्रियाओं को लागू करने, योजनाएं बनाने तथा मूल्यांकन में शामिल किया जाना चाहिये, क्योंकि इन सबका सीधा असर इन लोगों पर ही पड़ता है। हालांकि, अधिकतर मामलों में स्थानीय लोगों की सहमति नहीं लिये जाने और उन्हें नजरअंदाज किये जाने की बात सामने आती है।

- **जीवन और आजीविका का अधिकारः** जब सुरक्षाबल लोगों को बलात हटाते हैं या विकास परियोजनाओं के चलते नागरिकों को विस्थापित किया जाता है तो यह सीधे तौर पर जीवन के अधिकार के लिये चुनौती बन जाता है। जीवन का अधिकार UDHR (Article 3) और ICCPR (Article 6) में वर्णित है। इसी तरह घरों, पर्यावास के छिन जाने से आजीविका का अधिकार भी हनन होता है, क्योंकि लोगों से उनकी पारंपरिक खेती, शिकार, स्थानीय व्यापार आदि विस्थापन के कारण छिन जाते हैं। UDHR (Articles 17 and 23, respectively) और Article 6 ICESCR ने संपत्ति के अधिकार को स्पष्ट किया है। इतना ही नहीं, Article 11 ICESCR स्पष्ट करता है कि राज्य व संबंधित संस्थाओं को प्रतिज्ञा देनी होगी कि वे प्रत्येक व्यक्ति के स्वयं और परिवार के साथ जीवन यापन के अधिकार, भोजन, आवास, कपड़े और उसकी जीवन परिस्थितियों में निरंतर सुधार पर दृढ़ हैं। जीवन के अधिकार में पर्यावरण का अधिकार भी शामिल है, जो जीवन और सततता के लिये आवश्यक है। The Convention on Biological Diversity (CBD) 1992 के अनुसार राज्य मौजूदा और भावी पीढ़ियों के लाभ के लिये जैवविविधता के संरक्षण, सततता के लिये प्रतिबद्ध है।

पर्यावरणीय परिणाम

विकास प्रेरित विस्थापन बड़े पैमाने पर पर्यावरणीय प्रभावों का भी कारक बनता है। इसका असर खाली किये जाने वाले स्थान और विस्थापन की नयी जगह पर भी होता है। ये प्रभाव विकास परियोजनाओं के लिये लाभकारी हो सकते हैं, जैसे– वन्यजीवों और जैवविविधता के लिये विकास के अवसर उपलब्ध हो पाते हैं। लेकिन कई बार वन्यजीवों और उनके पर्यावास पर इसके असर भी नजर आते हैं। विभिन्न शोध, अध्ययनों से इसके निम्न परिणाम स्पष्ट होते हैं।

- **भूउपयोग परिवर्तनः** विस्थापित की जाने वाली आबादी के लिये स्कूल, आवास, अस्पताल, परिवहन, संचार आदि बुनियादी सुविधाओं के विकास की आवश्यकता होती है, जिसके लिये जमीन जरूरी है। आमतौर पर नदियों के किनारे, कृषि भूमि और वन भूमि का इस्तेमाल इन उद्देश्यों की पूर्ति के लिये किया जाता है। इस दौरान भूउपयोग में किया जाने वाला परिवर्तन कई पर्यावरणीय परिणामों की वजह बनता है, जिनमें पर्यावास का नुकसान, जलाच्छादित क्षेत्रों में कमी आदि शामिल हैं। हाल के वर्षों में इस तरह के क्षेत्रों में नगरीय विकास में खासी तेजी दर्ज की गयी है।

- **जैवविविधता पर प्रभावः** प्राकृतिक क्षेत्रों के आसपास विस्थापन के चलते कई बार अव्यवस्थाएं उत्पन्न होती हैं, जिसका जैवविविधता पर गहरा असर होता है। कई जीव प्रजातियां इस दौरान नष्ट हो जाती हैं। विकास परियोजनाओं के कारण वन्यजीवों के कई कॉरिडोर समाप्त हो चुके हैं। इसके अलावा वन्यजीवों के लिये भोजन का संकट भी इससे बढ़ता जाता है। यह सब कई बार मानव–वन्यजीव संघर्ष का भी कारण बनता है।

- **जल संसाधन पर प्रभावः** विस्थापन की नयी जगह पर जनसंख्या का दबाव बढ़ने से पानी की मांग खासी बढ़ जाती है, जिसके चलते जलस्रोतों पर बुरा असर पड़ता है और जलस्तर में गिरावट आने लगती है। इतना ही नहीं, कृषिकार्य में रसायनों के इस्तेमाल से भी जलस्रोतों के पानी की गुणवत्ता खराब होती है। आसपास के प्राकृतिक जलस्रोतों में प्रदूषण लगातार बढ़ता जाता है, जो जलीय जीवों के लिये भी घातक होता है।

- **प्राकृतिक संसाधनों पर असरः** विस्थापन के नये स्थान पर प्राकृतिक संसाधनों पर भी दबाव बढ़ जाता है। यह संसाधनों के लुप्ति के कगार पर पहुंच जाने का कारण बन जाता है। इससे प्राकृतिक संसाधन न सिर्फ खत्म होने लगते हैं, बल्कि उनकी गुणवत्ता पर भी गहरा नकारात्मक असर पड़ता है।

6.6 आंतरिक विस्थापन के निर्देशक सिद्धांत (Guiding Principles of Internal Displacement)

मानवीय विस्थापन से जुड़े परिणामों, समस्याओं, मसलों के निस्तारण के लिये मानक सिद्धांत निर्धारित किये गये हैं। The United Nation Commission on Human Right (UNCHR) ने 1998 में आंतरिक विस्थापन प्रक्रिया को वैश्विक विषय मानते हुये निर्देशक सिद्धांत दिये। ये सिद्धांत आंतरिक रूप से विस्थापित होने वाले लोगों के मानवाधिकार, मानवीय नियमों, संरक्षण, पुनर्वास जैसे मसलों का ध्यान रखते हैं। इन सिद्धांतों

में अधिकारों का पूरा ख्याल रखा गया है और वे लोगों की बलात विस्थापन से संरक्षा में सहायक होते हैं। ये सिद्धांत अंतर्राष्ट्रीय मानवाधिकार नियमों को बढ़ावा देते हैं। ये सिद्धांत निम्न को निर्देशित करते हैं:

- महासचिव के प्रतिनिधि को आंतरिक विस्थापित लोगों के संबंध में शासनादेश देने के बाबत
- राज्यों को, जब वे आंतरिक विस्थापन के घटनाक्रम का सामना कर रहे होते हैं
- अन्य सभी अधिकरणों, समूहों, संस्थाओं और व्यक्तियों को, जो आंतरिक विस्थापित होने वाले लोगों से संबद्ध हों
- अंतर्सरकारी एवं गैर सरकारी संगठनों का जब वे आंतरिक विस्थापन प्रक्रिया में शामिल हों

इन सिद्धांतों को और बेहतर तरीके से समझने के लिये **Agenda item 9 b Report of the Representative of the Secretary-General, Mr. Francis M. Deng, submitted pursuant to Commission resolution 1997/39. Addendum: Guiding Principles on Internal Displacement**(UNCHR 1998) को देखा जाना चाहिये

6.7 सन्दर्भ (References)

1) Agnihotri A. (1994).The Orissa Resettlement and Rehabilitation of Project-Affected Persons Policy: An analysis of its robustness with reference to the Impoverishment Risks Model, In A.B. Ota and A. Agnihotri (*eds.*), Involuntary Resettlement in Dam Projects. New Delhi: PrachiPrakashan.
2) Asian Development Bank (2000). Special Evaluation Study on the Policy Impact of Involuntary Resettlement, Manila, Philippines.
3) Cernea M. (1988). Involuntary Resettlement in Development Projects: Policy Guidelines in World Bank-Financed Projects.
4) CerneaM. (1999). Why Economic Analysis is Essential to Resettlement: A Sociologist's View. In Michael Cernea (ed) The Economics of Involuntary Resettlement: Questions and Challenges (Washington, DC: World Bank).
5) Cernea M., McDowell C. (2000). Risks and reconstruction: experiences of resettlers and refugees. Washington (DC): World Bank.
6) Cernea M. (2000). Risks, safeguards and reconstruction: a model for population displacement and resettlement. Economics and Political Weekly. 35:3659–3678.
7) CerneaM. (2006). Re-examining 'displacement': a redefinition of concepts in development and conservation policies. Social Change. 36:8–35.

8) Cernea M, Schmidt K. (2006). Poverty risks and national parks: policy issues in conservation and resettlement. World Development. 34:1808–1830.

9) CBD (2004). Akwe′: kon – Voluntary guidelines for the conduct of cultural, environmental and social impact assessment regarding developments proposed to take place on, or which are likely to impact on, sacred sites and on lands and waters traditionally occupied or used by Indigenous and local communities. Montreal: Secretariat of the Convention on Biological Diversity.

10) Fernandes W. (1991). Power and Powerless: Development Projects and Displacement of Tribals, Social Action, Vol. 41, 242-68.

11) Frank V. (2017). Project-induced displacement and resettlement: from impoverishment risks to an opportunity for development?, Impact Assessment and Project Appraisal, 35:1, 3-21.

12) Government of India (2007). The National Rehabilitation and Resettlement Policy, Ministry of Rural Development, New Delhi: Government of India.

13) Government of India (2013). Right to Fair Compensation and Transparency in Land Acquisition, Rehabilitation and Resettlement Act, 2013. The Gazette of India. 26 September 2013.

14) Human Development Report (1990). Defining & Measuring Human Development, United Nation Development Programme, Oxford University Press, New York.

15) International Labor Organization Convention Concerning Indigenous and Tribal Peoples in Independent Countries, 1991.

16) IOM (2018). World Migration Report 2018. International Organization for Migration. ISBN 978-92-9068-742-9.

17) Iyer R. (2007). Towards a Just Displacement and Rehabilitation Policy, Economic and Political Weekly, Vol.42, No.30.

18) Siddiqui K. (2012). Development and Displacement in India: Reforming the Economy towards Sustainability, 25th International Congress on Condition Monitoring and Diagnostic Engineering, Journal of Physics: Conference Series. 364 012108.

19) Kothari A. (2009). Displacement & Relocation of protected areas: A synthesis & analysis of case studies. Economic & Political Weekly, Vol XLIV(49): 37-47.

20) Mahapatra L.K. (1992). Development for Whom? Depriving the Disposed Tribals, In W. Fernandes (*Eds*.): National Development and Deprivation. Indian Social Institute, New Delhi.

21) Negi N.S and Ganguly S. (2010). Development Project vs. Internally Displaced Population in India: A Literature Based Appraisal, Bad Salzuflen, Germany.

22) ParasuramanS. (1995). Development Projects and Displacement: Impact on Families, The Indian Journal of Social Work, Vol.56, p.195-210.

23) Rajagopal B. (2002). The Violence of Development," Washington Post, August 9, 2002.

24) Randell H. (2016). The short-term impacts of development-induced displacement on wealth and subjective well-being in the Brazilian Amazon. World Development, November 2016, 87: 385–400.

25) Robinson C.W. (2003).Risks and Rights: The Causes, Consequences, and Challenges of Development-Induced Displacement. Occasional Paper. The Brookings Institution-SAIS Project on Internal Displacement, May 2003.

26) Sharma R.N. and Singh S.R. (2009). Displacement in Singrauli Region: Entitlements and Rehabilitation, Economic and Political Weekly, 19th December, Mumbai.

27) Singh S. (1997). Taming the Waters, New Delhi: Oxford University Press.

28) Stanley J. Development-induced displacement and resettlement.

29) Taneja B. and Thakkar H. (2000). Large Dams and Displacement in India. Cape Town, South Africa: Submission no. SOC166 to the World Commission on Dams.

30) Terminski B. (2013). Development-Induced Displacement and Resettlement: Theoretical Frameworks and Current Challenges. Geneva, May 2013.

31) United Nations Commission on Human Rights. Freedom of Movement and Population Transfer, UN Doc: E/CN.4/Sub.2/1997/29, August 28, 1997.

32) United Nations Commission on Human Rights. Sub-Commission on Prevention of Discrimination and Protection of Minorities. Expert Seminar on the Practice of Forced Evictions (Geneva, June 11-13, 1997), UN Doc: E/CN.4/Sub.2/1997/7, July 2, 1997.

33) United Nations, Department of Economic and Social Affairs, Population Division (2009). World Population Prospects: The 2008 Revision, Highlights, Working Paper No. ESA/P/WP.210

34) UNCHR (1998). Report of the Representative of the Secretary-General, Mr. Francis M. Deng, submitted pursuant to Commission resolution 1997/39. *Addendum on:* Guiding Principles on Internal Displacement, Introductory note to the Guiding Principles.

35) World Commission on Environment and Development (1998). Our Common Future, Delhi: Oxford University Press.

36) World Commission on Dams (2000), Dams and Development: A new framework for decision-making. London: Earthscan.

इकाई **7**

पर्यावरणीय प्रबंधनः भूमि, जल एवं वन
(Environmental Management: Land, Water and Forests)

7.0: उद्देश्य (Objectives)

7.1: परिचय (Introduction)

7.2: पर्यावरण क्या है (What is Environment)

7.3: पर्यावरणीय प्रबंधन (Environmental Management)

7.3.1: भूमि प्रबंधन (Land Management)

7.3.2: जल प्रबंधन (Water Management)

7.3.3: वन प्रबंधन (Forest Management)

7.4: जनसहयोग एवं जागरूकता (Public Inputs and Awareness)

7.5: सन्दर्भ (References)

7.0: उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन का उद्देश्य पर्यावरण एवं इसके महत्व को समझना है। इसके अलावा हम इस इकाई के अध्ययन के बाद विभिन्न प्राकृतिक संसाधनों के पर्यावरणीय प्रबंधन को भी जान सकेंगे।

7.1: परिचय (Introduction)

पर्यावरण यानी **Environment** शब्द की उत्पत्ति फ्रेंच शब्द इन्वायरनिया (Environia) से हुई है, जिसका अर्थ होता है परिवेश अथवा चारों ओर से (Surround) होता है। यह जैविक (Living) और अजैविक (Physical or Non-living) दोनों तरह के पर्यावरण को समाहित करता है। इस तरह इसका अर्थ उस परिवेश से है, जिसमें जीव जीते हैं। पर्यावरण एवं जीव (Organism) प्रकृति के गतिशील और मिश्रित घटक हैं। पर्यावरण मानव समेत सभी जीवों के जीवन को नियंत्रित करता है। मनुष्य अन्य जीवों की अपेक्षा पर्यावरण से अधिक क्षमता से जुड़ाव रखता है। सामान्यतः पर्यावरण उन सामग्रियों और बलों का समूह है जो जीवों की जीवनचर्या को चारों ओर से घेरे रहते हैं। यह भौतिक, जैविक और सांस्कृतिक घटकों का समूह है, जो व्यक्तिगत और सामूहिक रूप से एक–दूसरे से जुड़े हुए रहते हैं। पर्यावरण उन परिस्थितियों का समूह है, जिनमें किसी जीव को अस्तित्वमान रहना होता है अथवा अपनी जीवन प्रक्रिया को व्यवस्थित रखना होता है। यह जीवों के विकास और जीवनप्रक्रिया को प्रभावित करता है।

7.2: पर्यावरण क्या है (What is Environment)

पी. गिस्बर्ट के अनुसार, 'पर्यावरण का अर्थ हर उस चीज से है जो किसी वस्तु–जीव को चारों ओर से घेरे हुए हो और उस पर प्रत्यक्ष प्रभाव का दबाव डालती हो।' वहीं, ईजे रॉस मानते हैं, 'पर्यावरण एक बाहरी बल है जो हमें प्रभावित करता है।' इस तरह पर्यावरण हर उस चीज, परिवेश को माना जा सकता है जो जीवनचर्या को प्रभावित करता हो। मानव जीवन के लिहाज से देखें तो पर्यावरण वह वस्तु अथवा घटक है जो हमसे अलग होने के बावजूद हमारे जीवन और गतिविधियों पर असर डालता है। मानव जिस पर्यावरण से घिरा रहता है, वह प्राकृतिक के अलावा कृत्रिम, सामाजिक, जैविक और मनोवैज्ञानिक भी हो सकता है।

7.2.1: पर्यावरण के घटक (Components of Environment)

पर्यावरण मुख्यतः चार घटकों वायुमंडल (Atmosphere), जलमंडल (Hydrosphere), स्थलमंडल (Lithosphere) और जीवमंडल (Biosphere) का समूह है, लेकिन इसे फौरी तौर पर दो प्रकारों सूक्ष्म पर्यावरण (Micro Environment) और वृहद पर्यावरण (Macro Environment) में बांटा जा सकता है। इसे दो अन्य प्रकारों में भी देखा जा सकता है, ये हैं– भौतिक (Physical) और जैविक (Biotic)।

1. सूक्ष्म पर्यावरण का अर्थ जीवों के निकटतम स्थानीय परिवेश से है।

2. वृहद पर्यावरण का तात्पर्य हर भौतिक, जैविक परिस्थिति से है जो जीवों को बाहर से घेरे रहती हैं।

3. भौतिक पर्यावरण का अर्थ सभी अजैविक (Abiotic) कारकों और परिस्थितियों से है। उदाहरण के लिये तापमान, प्रकाश, मिट्टी, वर्षा, खनिज आदि। इसमें वायुमंडल, स्थलमंडल और जलमंडल भी शामिल होते हैं।

4. जैविक पर्यावरण में जीवों के सभी जैविक कारक शामिल होते हैं, जैसे पौधे, पशु–पक्षी, मानव, सूक्ष्म जीव आदि।

7.3: पर्यावरणीय प्रबंधन (Environmental Management)

मिट्टी (Soil), पानी (Water) और वनस्पतियां (Vegetation) तीन बुनियादी प्राकृतिक संसाधन हैं। सृष्टि (Creation) का अस्तित्व इन पर निर्भर करता है और प्रकृति ने इन्हें मनुष्य को खजाने (Assets) के रूप में दिया है। विस्तार से देखें तो भूमि, जल, जैवविविधता, आनुवंशिक संसाधन, जैविक ऊर्जा, जंगल, पालतू पशु, जलचर, पादप आदि सभी प्राकृतिक संसाधन हैं। अब अगर हम इन्हें अपने बुनियादी संसाधनों के तौर पर देखते हैं तो यह जरूरी हो जाता है कि हम इनके प्रबंधन के लिये आवश्यक उपाय करें।

प्राकृतिक संसाधनों के प्रबंधन का अर्थ जल, मिट्टी, वनस्पतियों, पशुओं के इस तरह प्रबंधन से है, जो वर्तमान जीवन की गुणवत्ता में तो वृद्धि का जरिया बने ही, आने वाली पीढ़ियों के लिये भी लाभकारी हो। प्राकृतिक संसाधनों का प्रबंधन वह व्यवस्था है, जिसमें मानव समुदाय और प्राकृतिक परिदृश्य एक–दूसरे से जुड़ते हैं। इसमें भूमि उपयोग प्रबंधन, जल प्रबंधन, जैवविविधता संरक्षण और कृषि, खनन, पर्यटन, मत्स्य पालन और वानिकी जैसी प्रक्रियाएं शामिल होती हैं। इससे स्पष्ट होता है कि जीव और उनकी जीवनचर्या

प्राकृतिक परिदृश्य की उत्पादकता और अच्छी गुणवत्ता पर निर्भर होते हैं और प्रबंधक के रूप में उनकी भूमिका प्राकृतिक परिदृश्य की सेहत, उत्पादकता और गुणवत्ता को बनाये रखने के लिये महत्वपूर्ण है।

Figure 1.

प्राकृतिक संसाधनों का प्रबंधन मुख्यतः संसाधनों की वैज्ञानिक और तकनीकी समझ तथा पारिस्थितिकी व संसाधनों की जीवनोपयोगी क्षमताओं पर केन्द्रित रहता है। पर्यावरणीय प्रबंधन भी प्राकृतिक संसाधनों के प्रबंधन के ही समान है।

Figure 2.

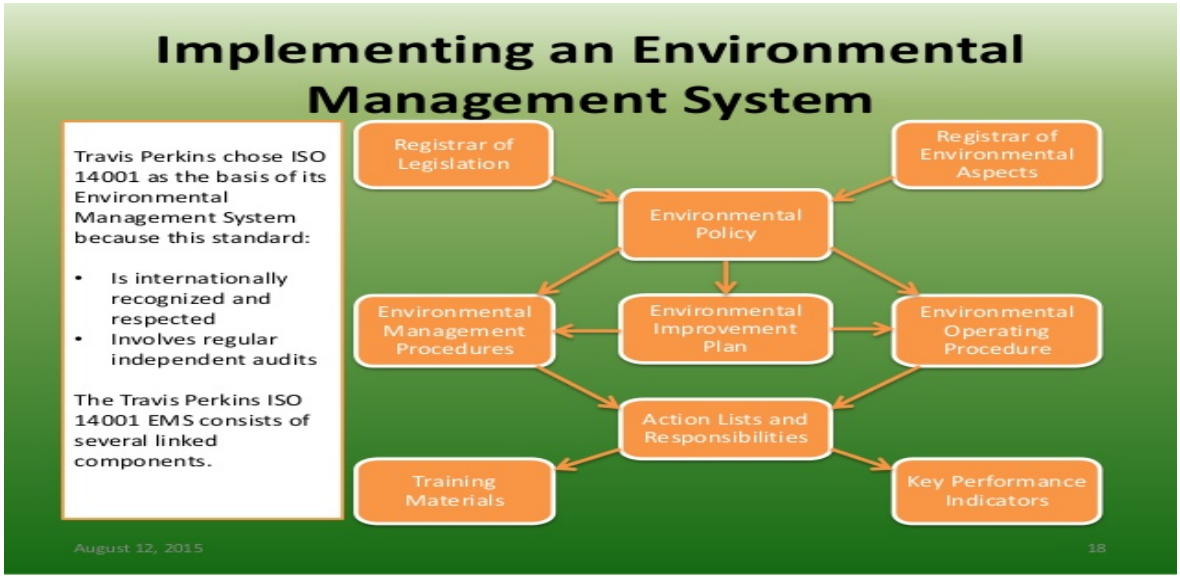

पारिस्थितिकी संतुलन और पारिस्थितिकी स्थायित्व दोनों प्रकृति के स्तर पर स्वतः व्यवस्थित रहती हैं, लेकिन आधुनिक औद्योगिक दौर में भारी मात्रा में औद्योगीकरण, तकनीकी क्रांतियों, परिवहन के लगातार नये साधनों, संसाधनों के अंधाधुंध दोहन और अनियोजित शहरीकरण ने पारिस्थितिकी संतुलन को खराब किया

है। दूसरे शब्दों में कहें तो आधुनिक आर्थिक और तकनीकी मनुष्य की मानवीय गतिविधियों ने मानव समुदाय और पर्यावरण के बीच सामंजस्यपूर्ण संबंध को बिगाड़ दिया है। इसलिये, पर्यावरणीय प्रबंधन वह प्रक्रिया बन गयी है जो पर्यावरण और मानव समुदाय के बीच समावेशी संबंधों को बेहतर कर सके और मनुष्य की विध्वंसकारी गतिविधियों को निरीक्षित–नियंत्रित कर संरक्षण, नियमितीकरण और प्रकृति के पुनर्जीवन की दिशा में काम कर सके।

पर्यावरण प्रबंधन प्रक्रिया का अर्थ मनुष्य–प्रकृति के बीच तर्कसंगत संबंध से है, जिसमें दोहन की उचित प्रक्रिया और प्राकृतिक संसाधनों का पारिस्थितिकी संतुलन व पारिस्थितिकी तंत्र को नुकसान पहुंचाए बिना उपभोग करने से है। प्राकृतिक संसाधनों का आवश्यकता से अधिक दोहन किये जाने की स्थिति किसी भी देश के सामाजिक–आर्थिक विकास के लिये नुकसानदेह हो सकती है। इस तरह पर्यावरणीय प्रबंधन प्रक्रिया में पारिस्थितिकी सिद्धांतों के साथ समाज के सामाजिक–आर्थिक जरूरतों को भी ध्यान में रखना आवश्यक हो जाता है। यानी एक ओर तो सामाजिक–आर्थिक विकास को बाधित नहीं होने देना होता, वहीं दूसरी ओर पर्यावरणीय गुणवत्ता को भी प्रभावित किये बिना व्यवस्थित रखना होता है।

Figure 3.

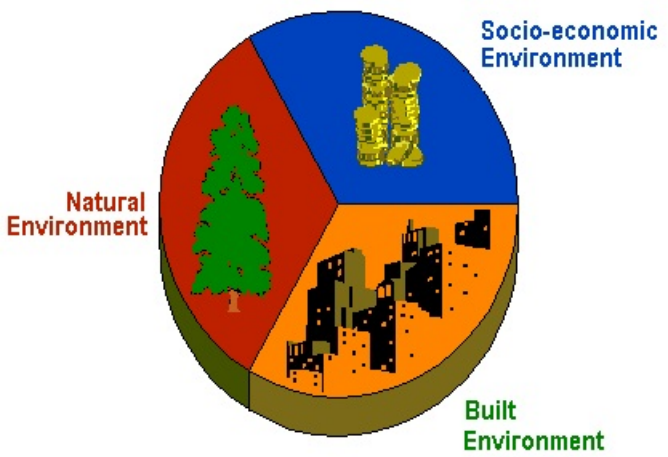

उपरोक्त चर्चा से यह स्पष्ट है कि पर्यावरणीय प्रबंधन के दो महत्वपूर्ण पहलू हैं:

1. सामाजिक–आर्थिक विकास
2. जीवमंडल का स्थायित्व और व्यक्तिगत पारिस्थितिकी तंत्र का स्थायित्व (C.C. Park 1981).

पर्यावरणीय प्रबंधन के विस्तृत लक्ष्यों में ये भी शामिल होते हैं:

1. पर्यावरणीय समस्याओं की पहचान और इनके समाधानों की तलाश
2. प्राकृतिक संसाधनों के दोहन और उपभोग को नियंत्रित करना और अत्यधिक दोहन पर रोक
3. पर्यावरण को हुए नुकसान की भरपाई करना और प्राकृतिक संसाधनों का नवीनीकरण
4. पर्यावरणीय प्रदूषण और गुणवत्ता का नियंत्रण करना
5. प्राकृतिक आपदाओं और दुर्घटनाओं को कम करना
6. प्राकृतिक संसाधनों का अनुकूलतम उपयोग

7. मौजूदा तकनीकों की निरंतर समीक्षा और उन्हें पर्यावरण संरक्षण के लिहाज से परिष्कृत करना
8. प्रस्तावित योजनाओं–परियोजनाओं और गतिविधियों के पर्यावरण पर असर का आकलन
9. पर्यावरण संरक्षण कार्यक्रमों को दृष्टिगत रखते हुए नियमों का निर्धारण और इन्हें लागू करवाना

पर्यावरणीय प्रबंधन के पांच बुनियादी पहलू (5 Fundamental Aspects of Environmental Management)

1. पर्यावरणीय संवेदना और जनजागरूकता: इसमें निम्न बिंदु शामिल होते हैं:

1. पर्यावरणीय संवेदना और जनजागरूकता के संसाधन
2. पर्यावरणीय संवेदना का स्तर
3. पर्यावरणीय योजना एवं प्रबंधन की प्रक्रिया में पर्यावरणीय संवेदना की भूमिका

2. पर्यावरणीय शिक्षण एवं प्रशिक्षण: स्कूल, कॉलेज और विश्वविद्यालयों में पर्यावरण संबंधी शिक्षा और प्रशिक्षण दिया जाना चाहिये, ताकि छात्र पर्यावरण के विषय में संवेदनशील बनें और इसके संरक्षण में काम करें।

3. संसाधन प्रबंधन: इसमें निम्न बिन्दु शामिल रहते हैं:

1. प्राकृतिक संसाधनों का वर्गीकरण
2. पारिस्थितिकी संसाधनों का सर्वेक्षण और मूल्यांकन
3. संसाधनों का बचाव
4. संसाधनों का संरक्षण

4. प्रदूषण और पर्यावरणीय नुकसान पर नियंत्रण: इसे निम्नवत समझा जा सकता है:

1. प्रदूषण पर नियंत्रण
2. प्राकृतिक आपदाओं को कम करने के लिये निरंतर संरक्षण प्रक्रिया को अपनाना
3. पर्यावरण को हुए नुकसान को दूर कर इसे पुनर्जीवित, संरक्षित करना

5. पर्यावरणीय प्रभाव का मूल्यांकन: इसमें से बिन्दु शामिल रहते हैं:

1. मौजूदा पर्यावरणीय परिस्थितियों का अध्ययन, मूल्यांकन
2. मौजूदा और प्रस्तावित उत्पादन प्रक्रियाओं का मूल्यांकन
3. सिद्धांत और कार्यपद्धतियां
4. मौजूदा और प्रस्तावित योजनाओं के संभावित प्रभाव
5. तकनीक की निरंतर समीक्षा और आवश्यक सुधार

पर्यावरणीय प्रबंधन की तकनीक (Techniques of Environmental Management)

पर्यावरणीय प्रबंधन की दो प्रमुख तकनीक हैं, 1. पर्यावरणीय सूचना तंत्र (Environmental Information System: ENVIS) और 2. रिमोट सेंसिंग व भौगोलिक सूचना तंत्र (Remote

Sensing and Geographical Information System: GIS)। आज के विकसित और वैज्ञानिक दौर में सूचना प्रौद्योगिकी (Information Technology) प्रामाणिक सूचनाएं उपलब्ध कराने में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन करती है, जो पर्यावरण के संरक्षण और निरंतर विकास की दिशा में खासी मददगार साबित होती हैं। पर्यावरणीय प्रबंधन प्रक्रिया में उपयोग की जाने वाली कुछ महत्वपूर्ण तकनीकों के बारे में हम विस्तार से जानेंगेः

पर्यावरणीय सूचना तंत्र (Environmental Information System: ENVIS): दिसंबर 1982 में भारत सरकार ने वैज्ञानिकों, शोधकर्ताओं, नीति निर्माताओं आदि को पर्यावरण संबंधी आवश्यक सूचनाएं उपलब्ध कराने के मकसद से पर्यावरणीय सूचना तंत्र की स्थापना की। तब से अब तक देशभर में वृहद पर्यावरणीय अध्ययन के लिये ऐसे 25 केंद्र प्रारंभ हो चुके हैं। पर्यावरणीय सूचना तंत्र केंद्र प्रदूषण नियंत्रण, विषैले रसायनों, केंद्रीय एवं तटीय पारिस्थितिकी, हरित तकनीक, कचरा निस्तारण और पर्यावरणीय प्रबंधन की दिशा में काम करते हैं। ये केंद्र पर्यावरणीय सूचनाओं के संकलन, संग्रहण, प्रसार और इनके माध्यम से राष्ट्रीय स्तर पर पर्यावरण संरक्षण का काम करते हैं।

रिमोट सेंसिंग व भौगोलिक सूचना तंत्र (Remote Sensing and Geographical Information System: GIS): यह तकनीक प्राकृतिक संसाधनों के अध्ययन और प्रबंधन में मददगार है। इस तकनीक की मदद से जलवायु परिवर्तन को चिह्नित कर पाना संभव होता है और इसके जरिये प्राकृतिक आपदाओं समेत विभिन्न प्रकार के नुकसानों को कम करने की दिशा में आवश्यक कदम उठाये जा सकते हैं। भारत में क्षेत्रीय और राष्ट्रीय स्तर पर विकासपरक गतिविधियों में रिमोट सेंसिंग तकनीक का व्यापक पैमाने पर इस्तेमाल किया जा रहा है। मुख्य उपलब्धियों के तौर पर देखें तो संसाधनों के मानचित्रीकरण, निगरानी और प्रबंधन अहम हैं। इसके अलावा बाढ़, चक्रवात, सूखा आदि प्राकृतिक आपदाओं के दौरान इसकी मदद से राहत कार्यों को बेहतर क्षमता और सुलभता से किया जा सकता है।

7.3.1: भूमि प्रबंधन (Land Management)

भूमि प्रबंधन का तात्पर्य भूमि संसाधनों के उपयोग और निंतर विकास के प्रबंधन से है। भूमि का उपयोग एक से अधिक अथवा एक–दूसरे से जुड़े विभिन्न उद्देश्यों की पूर्ति के लिये किया जा सकता है। ऐसे में भूमि उपयोग के एकीकृत प्रबंधन और योजना की आवश्यकता होती है, जो आर्थिक विकास के नकारात्मक प्रभाव से पर्यावरण को बचाये रखे। यह ग्रामीण और शहरी दोनों क्षेत्रों में भूमि संसाधनों के उपयोग के प्रबंधन और विकास की प्रक्रिया है। यहां भूमि का उपयोग कृषि, वनीकरण, जल संसाधन प्रबंधन, ईको–टूरिज्म समेत विभिन्न उद्देश्यों से किया जा सकता है। भूमि का क्षमता से अधिक अथवा गलत तरीके से किया जाने वाला दोहन उत्पादन क्षमता को घटा सकता है और प्राकृतिक संतुलन भी बिगड़ सकता है।

Figure 4.

पृथ्वी पर सभ्यता की शुरुआत से ही भूमि और जल जीवनचर्या के सबसे बुनियादी तत्व रहे हैं। धरती की सभी महान सभ्यताएं उन स्थानों पर पनपीं जहां इन संसाधनों की प्रचुर मात्रा उपलब्ध थी और इन सभ्यताओं का नाश भी इन संसाधनों में निरंतर गिरावट और विलुप्ति के चलते हुआ। मौजूदा दौर में भूमि पर विकास का दबाव लगातार बढ़ता गया है। इसके बावजूद यह मानव समुदाय के अस्तित्व में मददगार है। चिंताजनक स्थिति यह है कि विभिन्न कारणों से इस प्राचीन संसाधन का अंधाधुंध दोहन लगातार बढ़ता जा रहा है।

Figure 5.

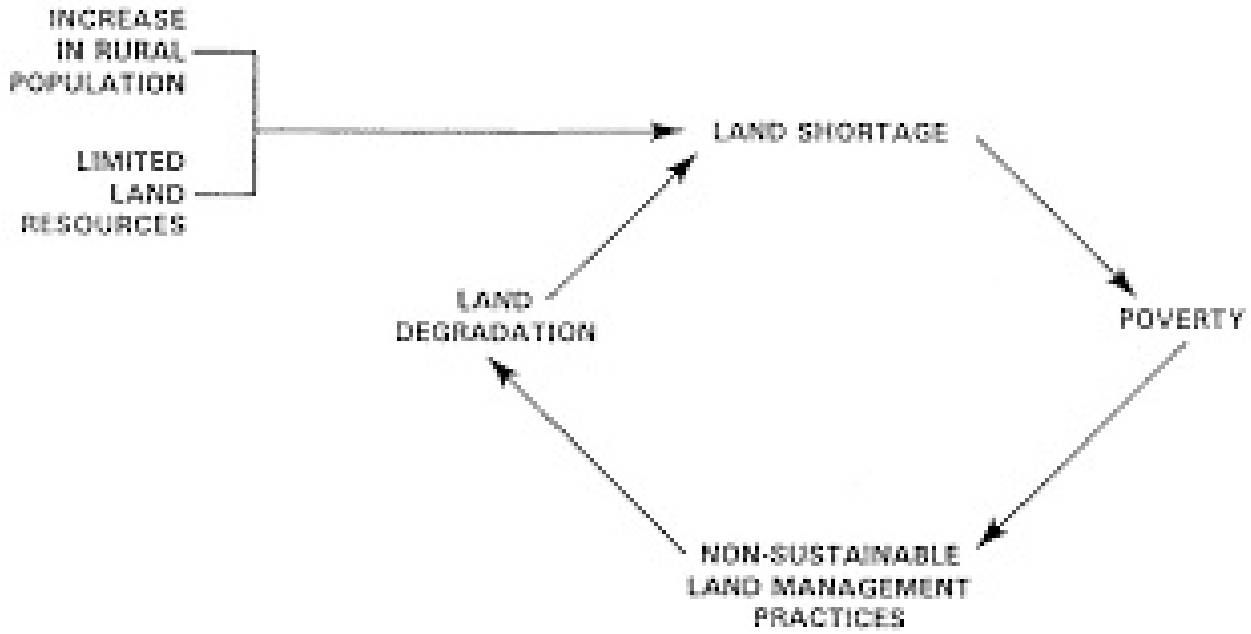

भूमि कृषि उत्पादन के लिये पर्यावरण उपलब्ध कराने के अलावा ग्रीन हाउस गैसों के स्रोतों को कम करने, पोषक तत्वों के पुनर्चक्र, प्रदूषक तत्वों के शोधन और सुधार और जलमंडल के एक कारक के तौर पर पानी

के शुद्धिकरण का भी काम करती है, जो बेहतर पर्यावरणीय प्रबंधन के लिहाज से आवश्यक भी है। सतत भूमि प्रबंधन (Sustainable Land Management: SLM) का मकसद भूमि संसाधनों (मिट्टी, जल एवं हवा) की गुणवत्ता को अक्षुण्ण रखते हुए इनके पर्यावरणीय, आर्थिक और सामाजिक आवश्यकताओं के लिहाज से उपभोग को सुनिश्चित करना एवं वर्तमान और भविष्य के दृष्टिगत संरक्षण है (Smyth and Dumanski, 1993)। सतत भूमि प्रबंधन का अर्थ मानव समुदाय की कृषि, वानिकी और संरक्षण के लिहाज से लगातार बदलती आवश्यकताओं के अनुरूप भूमि की व्यवस्था और इसके जरिये लंबे समय तक भूमि के सामाजिक–आर्थिक एवं पारिस्थितिकी कारक के तौर पर उपयोग को सुनिश्चित करना है। सतत कृषि विकास, प्राकृतिक संसाधनों का संरक्षण और सतत भूमि प्रबंधन को बढ़ावा देना विश्व बैंक के ग्रामीण निवेश कार्यक्रम From Vision to Action (World Bank, 1997) का मूल उद्देश्य है।

सतत भूमि प्रबंधन (Sustainable Land Management: SLM)

सतत भूमि प्रबंधन की प्रक्रिया तकनीकों, नीतियों और गतिविधियों का वह समूह है जो पर्यावरणीय पहलुओं को ध्यान में रखते हुए सामाजिक–आर्थिक सिद्धांतों का लक्ष्य रखता है। ऐसे में इस प्रक्रिया में यह आवश्यक होता है:

1. उत्पादन में बढ़ावा और इसकी निरंतरता बनाये रखना आर्थिक (Productivity)
2. उत्पादन जोखिम के स्तर को कम करना और भूमि अवक्रमण (Land Degradation) की स्थिति में भी मिट्टी की क्षमता को बनाये रखना (Stability/ Resilience)
3. प्राकृतिक संसाधनों की क्षमताओं का संरक्षण करना और पानी व जल की गुणवत्ता का संरक्षण (Protection)
4. आर्थिक तौर पर व्यावहारिक बनना (Viability)
5. सामाजिक तौर पर स्वीकार्यता और भूमि प्रबंधन के सुधारीकरण से होने वाले लाभ तक समाज की आसान पहुंच सुनिश्चित करना (Acceptability/ Equity)

पर्यावरण में सततता–निरंतरता बनाये रखने के लिये प्रबंधकीय रणनीति (Management Strategy) तैयार करना, समझना और लागू करना आवश्यक हो जाता है। यंग (Young) ने भूमि प्रबंधन के विषय में निम्न बिंदुओं पर जोर दिया है:

1. पारिस्थितिकी तंत्र (Ecosystem), जल, मिट्टी समेत प्रकृति की प्रक्रिया को समझना आवश्यक है
2. स्थानीय परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए ही क्षेत्रविशेष के लिये प्रबंधन की उचित व्यवस्था
3. स्थानीय लोगों (जिन्हें पर्याप्त जानकारी हो और वे कुशल हों) और वैज्ञानिकों (जिनके पास विषयसम्मत ज्ञान और संसाधन हों) के बीच बेहतर समन्वय की स्थापना

डेल (Dale) और अन्य ने वर्ष 2000 में जो अध्ययन किया, वह बताता है कि भूमि प्रबंधन के लिये पांच मूलभूत एवं सहायक पारिस्थितिकीय सिद्धांत हैं। ये सिद्धांत समय, स्थान, प्रजातियों, बाधाओं और प्राकृतिक स्थल या भूदृश्य (Time, Place, Species, Disturbances and Landscape) पर आधारित हैं, जिनका परस्पर जुड़ाव बना रहता है। ऐसे में भूमि प्रबंधन प्रक्रिया में वे इस गाइडलाइन के अनुसरण का सुझाव देते हैं:

1. किसी क्षेत्र के सन्दर्भ में स्थानीय निर्णयों के असर का परीक्षण करना और प्राकृतिक संसाधनों पर इसके प्रभाव को समझना
2. दीर्घकालिक परिवर्तनों एवं अप्रत्याशित घटनाओं की योजना तैयार करना
3. दुर्लभ प्राकृतिक स्थलों, तत्वों एवं इनसे जुड़ी प्रजातियों का संरक्षण
4. ऐसे भू उपयोग से बचना, जो प्राकृतिक संसाधनों को नुकसान पहुंचाता हो
5. महत्वपूर्ण प्राकृतिक आवासस्थलों वाले विस्तृत सम्मिलित क्षेत्रों को बनाए रखना
6. क्षेत्रविशेष में बाहरी (Non native) प्रजातियों की मौजूदगी और विस्तार को कम करना
7. पारिस्थितिकी तंत्र पर विकास प्रक्रिया की वजह से होने वाले नुकसान की भरपाई करना और जहां तक संभव हो तंत्र को अक्षुण्ण बनाये रखना
8. क्षेत्रविशेष के लिये ऐसा भूमि प्रबंधन तंत्र विकसित करना और इसे लागू करना, जो वहां के प्राकृतिक क्षमताओं के अनुरूप हो

7.3.2: जल प्रबंधन (Water Management)

जल के बिना जीवन की कल्पना भी नहीं की जा सकती। जीवन का विकास भी जल में ही संभव हुआ। जीवों की विभिन्न प्रजातियों के जन्म और विकास में जल का महत्वपूर्ण स्थान रहा है। जीवों के शरीर में भी 65 प्रतिशत पानी रहता है, जबकि पौधों में यह प्रतिशतता 65 से 99 प्रतिशत तक रहती है। यह स्पष्ट करता है कि जीवन के लिये जल कितना जरूरी और उपयोगी है। प्रकृति के दिये इस तोहफे को विभिन्न कार्यों के लिये उपयोग किया जाता है। विकास प्रक्रिया के लिये भी जल महत्वपूर्ण कारक है। भारत के लिहाज से बात करें तो यहां पेयजल की उपलब्धता और उपयोगिता बेहद सीमित है। भौगोलिक असमान वितरण इसकी बड़ी वजह है। परेशानी का एक मसला यह भी है कि जल की गुणवत्ता विभिन्न कारणों से दिनबदिन घटती जा रही है, जो हम सबके लिये चिंता का विषय है। जल की मांग और वितरण व्यवस्था के बीच समन्वय के अलावा यह भी जरूरी हो गया है कि विभिन्न जलस्रोतों के बीच संतुलन बनाकर रखा जाये। इस तरह आज जल संसाधनों का संरक्षण अनिवार्य हो गया है।

जल प्रकृति का सर्वाधिक मूल्यवान संसाधन है। यह अक्षय (Renewable) और अपार (Inexhaustible) तो है, लेकिन मौजूदा दौर में जल संसाधन को लेकर कई चुनौतियां भी बढ़ गयी हैं। पानी की मांग लगातार बढ़ती जा रही है, जबकि इसकी उपलब्धता और वितरण घट रहे हैं। वैश्विक सन्दर्भ में भारत के

जल संसाधन पर नजर डालें तो साफ होता है कि यहां दुनिया की 16 फीसदी आबादी रह रही है, जबकि विश्व का महज चार प्रतिशत ही जल संसाधन यहां उपलब्ध है। यह स्पष्ट करता है कि भारत प्रति व्यक्ति जल की उपलब्धता कितनी कम है। सिंचित क्षेत्र के लिहाज से भारत का दुनिया में पहला स्थान है, लेकिन देश का करीब 1/8 हिस्सा बाढ़ प्रभावित है, जबकि 1/6 भूभाग सूखा प्रभावित। इसका एक बड़ा कारण मानसून की प्रकृति भी है। लगातार बढ़ रही आबादी के लिये भारी मात्रा में अनाज और अन्य कृषि उत्पादनों की आवश्यकता है। इस वजह से फसलों की सिंचाई के लिये जल का उपभोग भी बढ़ रहा है। दूसरी ओर, शहरों में तेज गति से हो रहे शहरीकरण, औद्योगीकरण और आधुनिकीकरण के चलते भी पानी की मांग में लगातार वृद्धि हो रही है। इसके अलावा सीवरेज और कचरा निस्तारण के लिये भी जल के उपयोग, उपभोग और मांग बढ़ी है। दुनियाभर में जल संसाधनों पर दबाव बढ़ा है। नदियां, झीलें और भूमिगत जलवाही स्तर (Aquifers) सिंचाई, पेयजल, सफाई आदि कार्यों के लिये ताजे जल को उपलब्ध कराते हैं, जबकि सागर–महासागर पृथ्वी की खाद्य श्रृंखला के बड़े हिस्से का वासस्थल हैं। कृषिभूमि का विस्तार, बांध, जलप्रवाह में परिवर्तन, अंधाधुंध दोहन और प्रदूषण जैसी समस्याएं दुनियाभर में इस अक्षय स्रोत के लिये बड़ी बाधा बन गये हैं।

जल के स्रोत (Sources of Water)

जल के चार प्रमुख स्रोत हैं, 1. सतही जल (Surface Water), 2. भूमिगत जल (Underground Water), 3. वायुमंडलीय जल (Atmospheric Water) और 4. समुद्री जल (Oceanic Water)

1. **सतही जल (Surface Water):** भूमि की सतह पर पाया जाने वाला जल सतही जल कहलाता है। सतही जल का मुख्य स्रोत वर्षाचक्र (Precipitation) है। वर्षाजल का करीब 20 प्रतिशत हिस्सा वाष्पीकृत हो जाता है और फिर पर्यावरण में मिल जाता है। बड़ा हिस्सा बहते हुए भूमिगत हो जाता है। सतही जल की बड़ी मात्रा नदियों, तालाबों, झीलों, नालों में मिलती है। बचा हुआ जल समुद्र में जाकर मिल जाता है। भारत के परिप्रेक्ष्य में कुल सतही जल का करीब दो तिहाई हिस्सा सिर्फ तीन नदियों सिन्धु, गंगा और ब्रह्मपुत्र नदियों में बहता है। भारत में बनाये गये बांधों–जलाशयों में जल संग्रहण की कुल क्षमता 1740 अरब घन मीटर है। स्वतंत्रता के समय यह क्षमता सिर्फ 180 अरब घन मीटर थी। यानी अब भारत में जल संग्रहण की क्षमता दस गुना तक बढ़ गयी है

2. **भूमिगत जल (Underground Water):** वर्षाजल रिसकर भूमि के भीतर चला जाता है, जिसे भूमिगत जल कहा जाता है। सतह पर बहने वाला पानी भी बड़ी मात्रा में रिसकर भूमिगत हो जाता है। इन दोनों वजहों से जमीन के भीतर पानी की भारी मात्रा उपलब्ध रहती है। केन्द्रीय भूमिगत जल बोर्ड के अनुसार भारत में 1994–95 में भूमिगत जल की मात्रा 4310 अरब घन मीटर प्रतिवर्ष थी, जिसमें से 3960 अरब घन मीटर जल उपयोग के लिये उपलब्ध रहता है। हालांकि, भूमिगत जल का वितरण सभी जगह समान नहीं रहता है। भूमिगत जल की उपलब्धता किसी क्षेत्र में वर्षा की मात्रा, प्रकृति, भूमि की प्रकृति और वहां मौजूद ढलान पर निर्भर करती है। भारी वर्षा वाले वे क्षेत्र, जहां झरझरी चट्टानें और भूमि (Porous Rocks and Land) हों, में वर्षाजल आसानी से

जमीन में समा जाता है। ऐसे क्षेत्रों में भूमिगत जल प्रचुर मात्रा में उपलब्ध होता है। वहीं, राजस्थान जैसे क्षेत्रों में, जहां जमीन रेतीली और झरझरी होती है, भूमिगत जल की मात्रा बेहद कम है, क्योंकि वहां वर्षा कम होती है। देश के पूर्वोत्तर क्षेत्रों में ढलवा जमीन (Sloppy Land) के चलते परिस्थितियां बहुत अधिक वर्षा होने के बावजूद वर्षाजल के भूमिगत हो पाने के अनुकूल नहीं होतीं। यही वजह है कि इन क्षेत्रों में भी भूमिगत जल बेहद कम मात्रा में मिलता है, वह भी बहुत अधिक गहराई पर। गंगा और ब्रह्मपुत्र नदियों के मैदानी क्षेत्रों और देश के तटवर्ती इलाकों में भूमिगत जल की उपलब्धता सर्वाधिक पायी जाती है। प्रायद्वीपीय पठार (Peninsular Plateau), हिमालयी क्षेत्र (Himalayan Region) और रेगिस्तानी क्षेत्र (Desert) में भूमिगत पानी की सबसे कम मात्रा मिलती है।

Figure6.

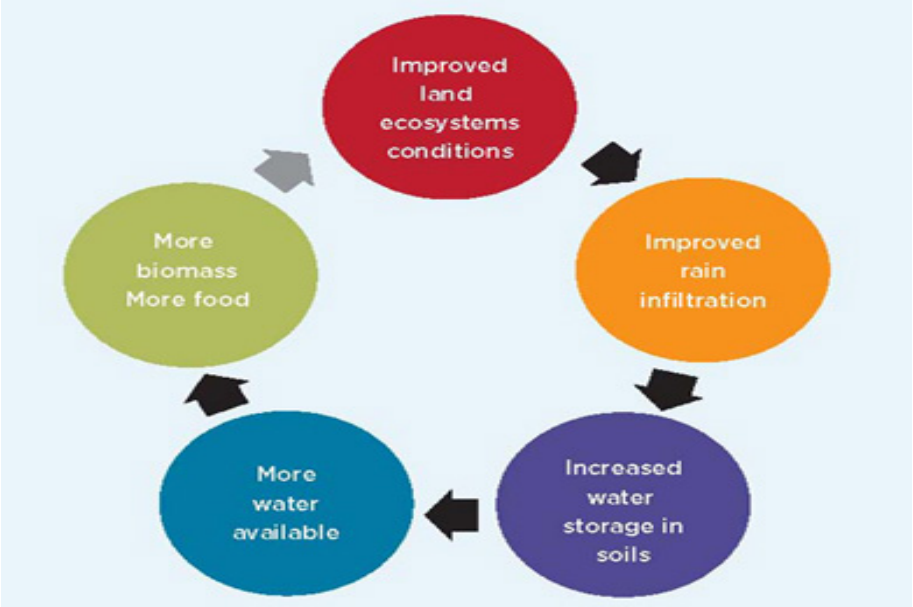

भूमिगत जलक्षमता का उपयोगः जिन क्षेत्रों में वर्षा कम होती है, वहां भूमिगत जल का बड़ी मात्रा में उपयोग किया जाता है। पंजाब, हरियाणा, राजस्थान, तमिलनाडु, गुजरात, उत्तर प्रदेश, आंध्र प्रदेश, मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र, कर्नाटक, छत्तीसगढ़ भारत के ऐसे ही राज्य हैं। ऐसे में इन राज्यों में भूमिगत जल के संसाधनों को बढ़ाने की खासी जरूरत है।

जल संरक्षण के तरीके (Methods of Water Conservation)

Figure 7.

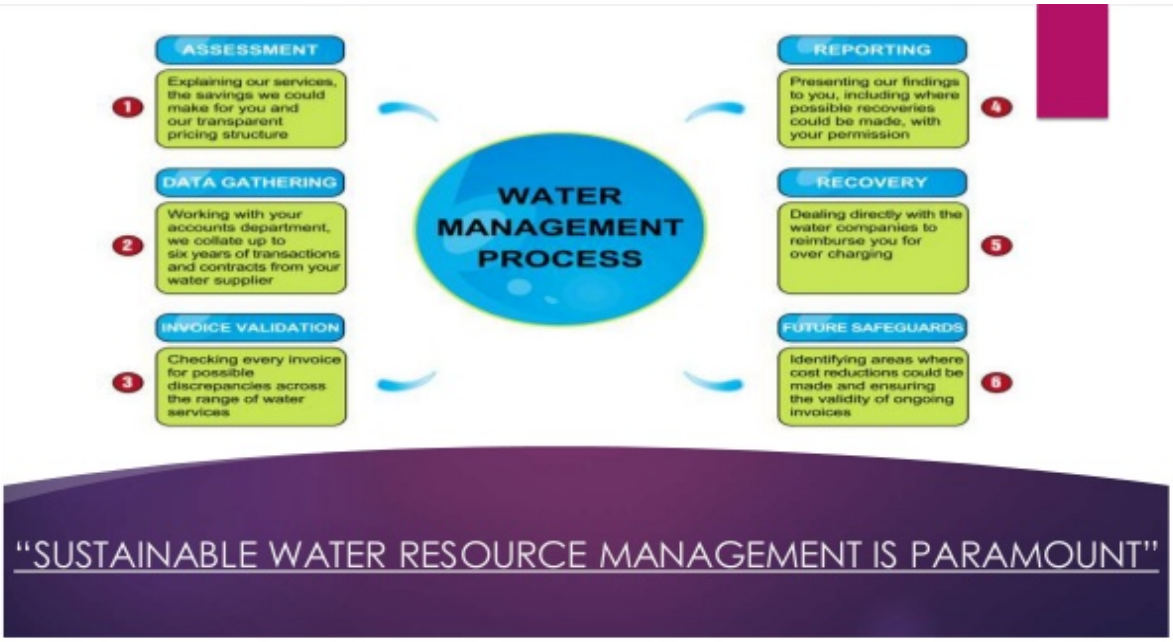

जहां जल नहीं है, वहां जीवन भी नहीं हो सकता। इसीलिये जल का संरक्षण किया जाना बेहद आवश्यक है। अन्यथा आने वाली पीढ़ियों को जलसंकट की बड़ी समस्या से जूझना पड़ सकता है। इस काम में व्यक्तिगत, सामाजिक और सरकार के स्तर पर आवश्यक कदम उठाये जाने की जरूरत है। जल संरक्षण के लिये निम्न तरीकों पर काम किया जा सकता है:

1. नदियों पर बांधों और जलाशयों का निर्माण किया जाना चाहिये, ताकि नदियों का पानी समुद्र में बहकर नष्ट न हो जाये
2. नदियों के पानी को शहरी कचरे और प्रदूषण से हर हाल में बचाना जरूरी है
3. बाढ़ नियंत्रण के लिये गंभीर प्रयासों की जरूरत है
4. जल का सीमित और उचित रूप से उपयोग किया जाना चाहिये
5. जल संरक्षण के लिये जनजागरूकता अभियान की जरूरत
6. जल संरक्षण से जुड़ी हर गतिविधि में आम लोगों की सक्रिय सहभागिता सुनिश्चित कर प्रभावी प्रबंधन की जरूरत है
7. पेयजल का इस्तेमाल बागवानी, वाहनों को धोने और घरों की साफ–सफाई में नहीं किया जाये

8. जलाशयों को प्रदूषण से बचाने की जरूरत
9. पेयजल सप्लाई व्यवस्था के तहत टूटी हुई पाइपलाइनों की तत्काल मरम्मत
10. जल की हर बूंद अमूल्य है, यह संदेश लोगों के बीच प्रसारित किया जाना चाहिये
11. ऐसी फसलों के उत्पादन को कम करना चाहिये, जिनकी सिंचाई के लिये अधिक पानी की जरूरत होती है
12. वनीकरण पर विशेष जोर दिया जाना चाहिये

7.3.3: वन प्रबंधन (Forest Management)

वन प्रबंधन वानिकी की एक शाखा है, जिसमें प्रशासनिक, आर्थिक, कानूनी, सामाजिक के साथ वैज्ञानिक–तकनीकी पहलुओं को ध्यान में रखते हुए वन संवर्द्धन, संरक्षण और वनीय नियमितीकरण का अध्ययन किया जाता है। इसके तहत जल, वानिकी, वन्यजीव, मनोरंजन, लकड़ी उत्पाद, वन संसाधन, मत्स्य, सौंदर्य, शहरी आवश्यकताओं आदि का प्रबंधन किया जाता है। प्रबंधन संरक्षण अथवा अर्थशास्त्र आधारित हो सकता है अथवा दोनों के मेल पर भी यह किया जा सकता है। तकनीक का उपयोग लकड़ी उत्पादन, पौधरोपण, विभिन्न प्रजातियों के पौधों के पुनः रोपण, जंगलों के बीच सड़क निर्माण, आग पर काबू पाने आदि में किया जाता है।

सतत वन प्रबंधन (Sustainable Forset Management)

देश के वन संसाधनों पर बीते कुछ दशकों में बढ़ते दबाव ने वनों के आसपास रहने वाले निर्धन और वनाधारित जनजातियों की जीवनचर्या पर खासा नकारात्मक असर डाला है। वन संसाधन किसी भी देश की समृद्धि और समुदाय के लिये बहुत आवश्यक तत्व हैं। जैवविविधता के संरक्षण, वैश्विक कार्बन अवशोषण जैसे लाभों के अलावा भी वे मानव समुदाय को कई तरह से लाभान्वित करते हैं और भविष्य के लिये हमेशा संसाधन उपलब्ध कराने का जरिया बने रहते हैं। गरीब हो चाहे अमीर, सभी प्रत्यक्ष–अप्रत्यक्ष रूप से वन संसाधनों पर निर्भर रहते हैं और भारत समेत विभिन्न विकासशील देशों में वानिकी ग्रामीण निर्धनता के उन्मूलन एवं सतत विकास में मददगार बन रही है। भारत के वर्तमान वन संसाधनों पर अत्यधिक दबाव है। दुनिया के कुल भौगोलिक क्षेत्र का सिर्फ ढाई प्रतिशत एवं उसमें भी दुनिया के कुल वन क्षेत्र का महज 1.85 प्रतिशत हिस्सा होने के बावजूद भारत की आबादी दुनिया की कुल जनसंख्या का 17 प्रतिशत है। इतना ही नहीं, भारत में दुनियाभर के पशुधन का भी 18 फीसदी हिस्सा रहता है। ऐसे में यह अनिवार्य हो जाता है कि वनाधारित समुदायों एवं जैवविविधता के संरक्षण के लिहाज से वनों को संरक्षित करने के साथ वहां सतत प्रबंधन भी किया जाये। हाल में, जनजागरूकता में बढ़ोतरी एवं दुनियाभर में हुए समझौतों, सम्मेलनों के बाद यह एक अभियान सा बन गया है कि अब सिर्फ उन्हीं वन उत्पादों को स्वीकार किया जाने लगा है, जो सतत वन प्रबंधन प्रक्रिया से जुड़े जंगलों में उत्पन्न हुए हों। इसके चलते बाजार आधारित एक तंत्र भी विकसित हुआ है जो सतत वन प्रबंधन को सहारा देता है। किसी उत्पाद के प्रमाणीकरण (Certification) और ईको लेबलिंग (Eco-labelling) से एक ओर उसका दाम बढ़ जाता है, दूसरी ओर यह सतत वन

प्रबंधन को भी प्रोत्साहित करता है। इससे सतत वन प्रबंधन के लिये मापदंड और सूचक भी तैयार हुए हैं। मिसाल के लिये लकड़ी की सतत प्राप्ति के लिये सतत वन प्रबंधन आवश्यक हो जाता है, जो स्वतः वन प्रबंधन के पर्यावरणीय, आर्थिक और सामाजिक पहलुओं पर केन्द्रित होता जाता है। सतत प्राप्ति का यह सिद्धांत वनों के आधुनिक प्रबंधन की शुरुआत से ही वन प्रबंधन का मुख्य फोकस माना जाता है। यही आधुनिक, व्यवस्थित वानिकी का मूल भी है।

वन प्रबंधन से जुड़े स्थानीय और वैश्विक मसलों के समाधान के लिये वैज्ञानिक ज्ञान की आवश्यकता होती है जो नीति निर्माण के लिये तकनीकी आधार उपलब्ध कराता है। सतत वन प्रबंधन को समझाने, परिभाषित और मूल्यांकन करने के लिये अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर कई महत्वपूर्ण मानकों को लागू करने प्रयोग किये गये हैं। इनमें जीवनचक्र मूल्यांकन, मूल्य–लाभ विश्लेषण, ज्ञानाधारित व्यवस्था और पर्यावरणीय प्रभाव मूल्यांकन आदि शामिल हैं। मापदंड एवं सूचक (Criteria and Indicator) सिद्धांत दुनियाभर में स्वीकृत किया गया है और व्यावहारिक प्रयोग के लिये इसमें निरंतर संशोधन के लिये अत्यधिक काम हुआ है। वर्षों से उपयोगी यह सिद्धांत वन संसाधनों के मूल्यांकन, निगरानी एवं सततता के विश्लेषण के लिये सक्षम माना जाता रहा है। वर्तमान में 160 देश इसी सिद्धांत के आधार पर सतत वन प्रबंधन के ऐसे नौ क्षेत्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय विकास योजनाओं से संबद्ध हैं, जो विभिन्न वानिकी परिस्थितियों से जुड़े हुए हैं। मानक एवं सूचक सिद्धांत किसी वानिकी परिस्थिति में परिवर्तन और परिमाण के मूल्यांकन में मदद करता है, जिससे वन प्रबंधकों को वह हर महत्वपूर्ण जानकारी मिलती है, जिसके जरिये वे वन संसाधनों के संबंध में जरूरी फैसले ले सकें।

इस सिद्धांत से विभिन्न देशों को वैज्ञानिक अध्ययन आधारित जानकारी जुटाने, संग्रहीत करने, वनों–वानिकी परिस्थितियों के मूल्यांकन में मदद मिली है। मापदंड (Criteria) अनिवार्य तत्वों को परिभाषित एवं इंगित करने के साथ उन परिस्थितियों एवं प्रक्रियाओं को भी सामने लाता है, जिनके जरिये सतत वन प्रबंधन का मूल्यांकन किया जा सके। मापदंड एवं सूचक सिद्धांत न सिर्फ किसी देश में सतत वन प्रबंधन को स्पष्ट करता है, बल्कि यह वैश्विक मानकों–नीतियों को समझने, निगरानी और विश्लेषण कर पाने का तंत्र भी उपलब्ध कराता है। कास्तानेदा (Castaneda) मापदंड को वन मूल्यों की शृंखला और वन प्रबंधन का वह अनिवार्य तत्व अथवा सिद्धांत मानते हैं, जिसकी मदद से वनों की सततता का मूल्यांकन संभव हो पाता है। वह बताते हैं कि हर मापदंड सततता के किसी न किसी मूलतत्व से जुड़ा हुआ है और यह एक या अधिक सूचकों (Indicators) से प्रदर्शित हो सकता है। यहां सूचक वे मानक हैं, जो मात्रात्मक (Quantitative) और गुणवत्तापरक (Qualitative) विश्लेषण के जरिये सतत वन प्रबंधन की निगरानी में मदद करते हैं।

वन (Forest): किसी वन को सामान्यतः वह क्षेत्र माना जाता है, जहां भारी मात्रा में पेड़ हों। लेकिन, विभिन्न परिभाषाओं के अनुसार पूरी तरह वृक्षविहीन कोई क्षेत्र भी इसलिये जंगल माना जाना चाहिये, क्योंकि पहले कभी वहां पेड़ों की बहुतायत थी अथवा भविष्य में वहां बड़ी मात्रा में पेड़ों को उगाया जा सकता है। आमतौर पर वनों की परिभाषा की तीन श्रेणियां मान्य हैंः प्रशासकीय (Administrative), भूउपयोग (Landuse) एवं भूआच्छादन (Landcover). प्रशासकीय परिभाषाएं मूलतः किसी जमीन की कानूनी पहचान पर आधारित होती हैं और इनका किसी भूभाग पर उगने वाली वनस्पतियों से संबंध लगभग नगण्य रहता है। इस आधार पर कई बार ऐसे क्षेत्रों को, जहां कोई पेड़ नहीं उगता हो, इसलिये वन माना जाता है क्योंकि कानूनी तौर पर उनकी पहचान वन की ही है। भूउपयोग संबंधी परिभाषाएं उस उद्देश्य पर

आधारित होती हैं, जिनकी पूर्ति के लिये भूमि का उपयोग किया जा रहा हो। उदाहरण के लिये, किसी ऐसे क्षेत्र को भी वन माना जा सकता है, जहां लकड़ी उत्पादन ही मूल लक्ष्य हो। भले ही सड़कों, अवस्थापना के विकास, खेती, आग समेत विभिन्न कारणों से वहां कोई पेड़ बाकी न रह गया हो, फिर भी भूउपयोग की परिभाषा के अनुसार उस क्षेत्र को जंगल ही माना जायेगा।

वहीं, भूआच्छादन परिभाषा किसी भूमि पर वनस्पतियों के उगने की सघनता, उनके प्रकार आदि के आधार पर वन को परिभाषित करती है। यह परिभाषा अलग–अलग चरणों में वन को परिभाषित करती है। इन चरणों में किसी क्षेत्र में पेड़ों की सघनता (Density), पेड़ों की सघनता के नीचे उपलब्ध भूमि या पेड़ों के तनों द्वारा घेरी जाने वाली भूमि भी शामिल हैं। इस तरह की परिभाषा के अनुसार किसी भूक्षेत्र को तभी वन माना जा सकता है, जब वहां पेड़ उग रहे हों। कुछ ऐसे क्षेत्र जो इस परिभाषा के मानक में पूरे नहीं होते, उन्हें भी इस लिहाज से वन माना जा सकता है कि वहां अभी पौधे हैं, जो भविष्य में पेड़ बनकर परिभाषा को पूर्ण कर पाएंगे।

भूउपयोग परिभाषा में जंगल (Forest), वुडलैंड (Woodland) एवं चरागाहों (Savanna) का अंतर और इनकी विभाजन रेखा स्पष्ट नजर आती है। कुछ परिभाषाओं के अनुसार वन वे भूक्षेत्र होते हैं, जहां पेड़ों का आच्छादित आवरण (Canopy Cover) 60 से 100 प्रतिशत तक हो। वुडलैंड में यह प्रतिशतता जंगल के मानक से कम होती है। इसी तरह चरागाहों में वृक्षों का आच्छादित आवरण दस प्रतिशत अथवा इससे भी कम होता है। वन वह भूक्षेत्र है, जिसके बड़े हिस्से पर पेड़ होते हैं।

सतत वन प्रबंधन का अर्थ समाज की लकड़ी, भोजन और अन्य जरूरतों के लिये इस तरह जंगलों से लाभ लेना है कि वहां पेड़ों–वनों का संरक्षण होता रहे और जैवविविधता को कोई नुकसान नहीं पहुंचे। हालांकि, दुनियाभर के कई वन आज भी सतत प्रबंधन प्रक्रिया से जुड़ नहीं सके हैं। कुछ देशों में नियमन, वन नीतियों, सांस्थानिक कार्यशैली का अभाव है तो कुछ के पास इतना धन एवं तकनीकी क्षमता नहीं है कि वे सतत वन प्रबंधन कर सकें। दूसरी ओर, कई देशों में यह भी देखा गया है कि उन्होंने वन प्रबंधन को अपनाया तो है, लेकिन इसे सतत लकड़ी उत्पादन तक ही सीमित कर दिया गया है, जबकि वनों से लकड़ी के अलावा भी कई अन्य उपयोगी उत्पाद एवं सेवाएं उपलब्ध हो सकती हैं।

वन विविध पारिस्थितिकी सेवाओं का माध्यम हैं, जिनमें कार्बन डाई ऑक्साइड को ऑक्सीजन और जैविक उत्पादों में बदलना, कार्बन अवशोषक की तरह काम करना, मौसमचक्र को नियमित–नियंत्रित करना, जल का शुद्धिकरण, बाढ़ और प्राकृतिक आपदाओं से बचाव आदि शामिल हैं। वन लकड़ी के स्रोत और मनोरंजन के साधन भी होते हैं।

Figure 8.

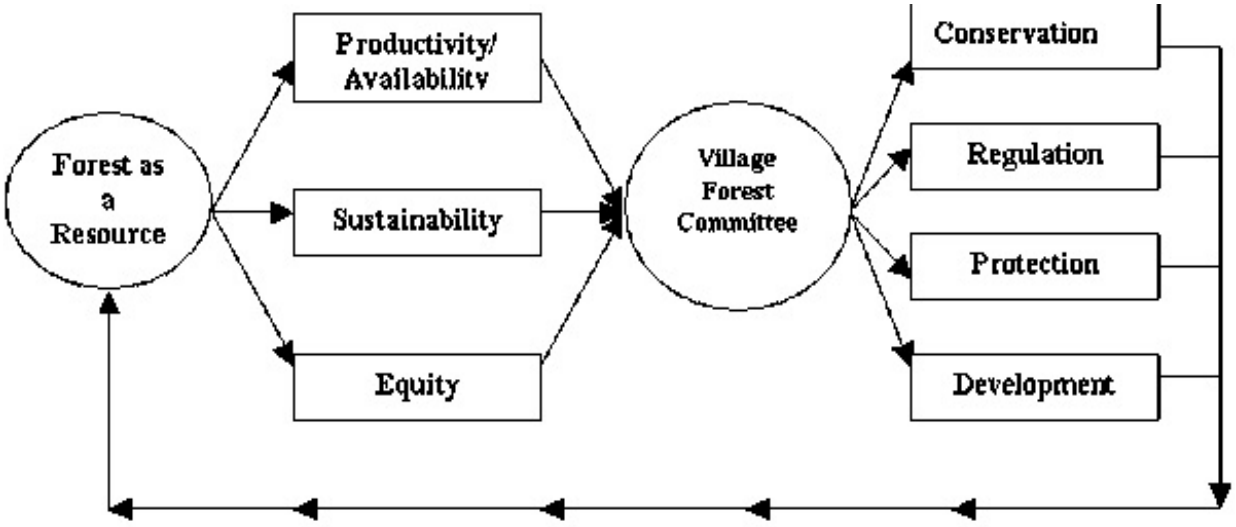

Resource Cycle.

कुछ शोधकर्ता मानते हैं कि वन सिर्फ लाभकारी नहीं होते, बल्कि कुछ मामलों में ये मानव समुदाय को नुकसान भी पहुंचाते हैं। वनों की वजह से आर्थिक बोझ बढ़ सकता है, वन किसी क्षेत्र की प्राकृतिक सुंदरता को कम कर सकते हैं, इनकी वजह से कृषियोग्य भूमि की कमी के कारण खाद्योत्पादन पर असर पड़ सकता है, जैवविविधता को नुकसान हो सकता है और मनुष्यों व अन्य जीवों के लिये पानी की उपलब्धता भी कम हो सकती है, वे घातक वन्यजीवों के बढ़ने की वजह बन सकते हैं और मनुष्यों व पालतू पशुओं के लिये खतरनाक कई रोग इन जंगलों से पनपने की भी आशंका रहती है।

पारिस्थितिकी वस्तुएं एवं सेवाएं (Ecosystem Goods and Services)	
व्यवस्थागत सेवाएं (Provisioning Services) **1.** भोजन, रेशा एवं ईंधन (Food, Fibre and Fuel) **2.** जैविक संसाधन (Genetic Resources) **3.** जैवरसायन (Biochemical) **4.** ताजा जल (Fresh Water)	**सांस्कृतिक सेवाएं (Cultural Services)** 1. आध्यात्मिक एवं धार्मिक मूल्य (Spiritual and Religious Values) 2. ज्ञान तंत्र (Knowledge System) 3. शिक्षा एवं प्रेरणा (Education and Inspiration) **4.** मनोरंजन एवं सौंदर्य ज्ञान तंत्र (Recreation and Aesthetic Values)
नियमन सेवाएं (Regulating Services) 1. आक्रमणरोधी (Invasion Resistance) 2. शाकाहार, वनस्पतियां (Herbivory) 3. परागन (Pollination) 4. बीज प्रसार (Seed Dispersal) 5. मौसम नियमन (Climate Regulation) 6. कीट नियमन (Pest Regulation)	**सहायक सेवाएं (Supporting Services)** 1. प्राथमिक उत्पादन (Primary Production) 2. वास व्यवस्था (Provision of Habitat) 3. पोषण चक्र (Nutrient Cycle) 4. मृदा गठन (Soil Formation and Retention) 5. वायुमंडलीय ऑक्सीजन का उत्पादन करना (Production of Atmospheric Oxygen)

7. रोग नियमन (Disease Regulation) 8. प्राकृतिक खतरों से बचाव (Natural Hazars Protection) 9. भूक्षरण नियमन (Erosion Regulation) 10. जल शुद्धिकरण (Water Purification)	6. जल चक्र (Water Cycle)

वनों के प्रबंधन को कई बार वानिकी मान लिया जाता है। पिछले कुछ दशकों में वन प्रबंधन के तरीकों में खासा बदलाव आया है, विशेषतः 1980 के बाद इसमें त्वरित परिवर्तन हुए हैं, जिसके बाद अब इसे सतत वन प्रबंधन कहा जाने लगा है। वन पारिस्थितिकी विशेषज्ञ वनों के स्वरूप (Patterns) और विकास (Process) के अध्ययन पर केन्द्रित रहते हैं, जिसका मकसद कारण और प्रभाव (Cause and Effect) संबंधों को स्पष्ट करना होता है। सतत वन प्रबंधन से जुड़े वन विशेषज्ञ पारिस्थितिकीय, सामाजिक और आर्थिक पहलुओं को ध्यान में रखते हुए काम करते हैं और इसमें कई बार स्थानीय समुदायों, हितधारकों से भी जरूरी सुझाव–सलाह लेते हैं।

मानव समुदाय की वजह से दुनियाभर में वनों की मात्रा में खासी गिरावट आई है। मानवजनित इन कारणों में शहरों का विस्तार, पेड़ों का कटान, खेती की जमीन के लिये लगायी जाने वाली आग आदि शामिल हैं। इन सब कारणों से वनों को होने वाले नुकसान और उनके पुनर्विकास से जंगलों के दो प्रकार बन गये हैं। पहला प्राथमिक अथवा मूल वन (Primary or Old growth Forest) और दूसरा द्वितीयक वन (Secondary Forest). आग, पादप रोग, मौसम, जीव प्रजातियों के बीच प्रतिद्वंद्विता, कीट आदि कई प्राकृतिक कारणों से भी वनों का स्वरूप बनता–बिगड़ता रहता है। 1997 में विश्व संसाधन संस्थान **(World Resource Institute)** ने पाया कि दुनियाभर में सिर्फ 20 फीसदी ही मूल वन शेष रह गये हैं। ये वन उन क्षेत्रों में हैं, जो आज तक मानवीय और अन्य हस्तक्षेप से अछूते हैं। विशेष बात यह थी कि इन वनों का 75 प्रतिशत हिस्सा सिर्फ तीन देशों रूस, ब्राजील एवं कनाडा में पाया गया।

7.4: जनसहयोग एवं जागरूकता (Public Inputs ans Awareness)

वन प्रबंधन समेत प्राकृतिक संसाधन नीतियों को लेकर जनजागरूकता में बढ़ोतरी की जरूरत है। लोगों के लिये अब जंगलों का अर्थ लकड़ी और लकड़ी उत्पादन के जरिये आर्थिकी कमाने की ओर ही नहीं, बल्कि वन संसाधनों, वन्यजीव, जैवविविधता, जलस्रोतों के प्रबंधन और संरक्षण से जोड़े जाने की जरूरत है। पर्यावरणीय जागरूकता से आम लोग जान पायेंगे कि वन प्रबंधन क्यों आवश्यक है और वन प्रबंधन विशेषज्ञ प्रकृति, वनों, पारिस्थितिकी तंत्र, वन संसाधनों को संरक्षित करने के लिये क्या व किस तरह काम करते हैं।

7.5: सन्दर्भ (References)

- "Glossary of Forestry Terms in British Columbia" *(pdf). Ministry of Forests and Range (Canada). March 2008*. Retrieved2009-04-06.
- Classification of Forest Management Approaches: A New Conceptual Framework and Its Applicability to European Forestry Philipp S. Duncker 1, Susana M. Barreiro 2, Geerten M. Hengeveld 3, Torgny Lind 4, William L. Mason 5, Slawomir Ambrozy 6 and Heinrich Spiecker 1|http://www.ecologyandsociety.org/vol17/iss4/art51/.

- Dale, V.H., Brown, S., Hawuber, R.A., Hobbs, N.T., Huntly, Nj., Naiman, R.J., Reibsame, W.E., Turner, M.G. & Valone, T.J. 2000. Ecological guidelines for land use and management, in Dale,V.H. & Hawuber, R.A. (eds). Applying ecological principles to land management, Springer-Verlag, NY.
- GENERAL ARTICLES 996 CURRENT SCIENCE, VOL. 94, NO. 8, 25 APRIL 2008 The authors are in the Indian Institute of Forest Management, P.O. Box 357, Nehru Nagar, Bhopal 462 003, India. *For correspondence. (e-mail: tajbar.india@gmail.com) Sustainable forest management in India Tajbar S. Rawat*, B. L. Menaria, D. Dugaya and P. C. Kotwal.
- http://pib.nic.in/feature/feyr2000/fsep2000/f120920001.html
- http://www.environmentalpollution.in/environmental-management/environmental-management-concept-scope-and-aspects-of-environmental-management/361
- http://www.nos.org/media/documents/316courseE/ch21.pdf
- http://www.yourarticlelibrary.com/environment/meaning-definition-and-components-of-environment/6157/
- https://en.wikipedia.org/wiki/Forest
- https://en.wikipedia.org/wiki/Forest_management
- https://en.wikipedia.org/wiki/Land_management
- Balenović, D. Vuletić, et al. Digital Photogrammetry — State of the Art and Potential for Application in Forest Management in Croatia. SEEFOR. South-East European Forestry. #2, 2011. Pp. 81-93.
- Balenovich, A. Seletkovich, et al. Comparison of Classical Terrestrial and Photogrammetric Method in Creating Management Division. FORMEC. Croatia 2012. P. 1-13.
- Mozgeris, G. (2008) “The continuous field view of representing forest geographically: from cartographic representation towards improved management planning”. S.A.P.I.EN.S. 1 (2).
- Philip Joseph Burton. 2003. Towards sustainable management of the boreal forest 1039 pages.
- *Shindler, Bruce; Lori A. Cramer (January 1999).* "Shifting Public Values for Forest Management: Making Sense of Wicked Problems". *Western Journal of Applied Forestry. Society of American Foresters. 14 (1): 28–34.* ISSN 0885-6095. Retrieved2008-08-25.

- Smyth, A.J. and Dumanski, J. 1993. FESLM: An international framework for evaluating sustainable land management. A discussion paper. World Soil Resources Report 73. Food & Agriculture Organization, Rome, Italy. 74 pp.

- The Value of Hardwood Floors.

- World Bank. 1997. Rural Development. From Vision to Action. ESSD Studies and Monographs Series 12. World Bank, Washington, DC. pp 157.

- *Young, Raymond (1982). Introduction to Forest Science. John Wiley & sons. p. 207.* ISBN 0471064386.